C No-197
223
हिन्दी-काव्य-मञ्जूषा
रमाशङ्कर पाण्डेय
1971
0152,1PAN 1,1
K4
चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी-१
CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri

॥ श्रीः ॥

हिन्दी-काव्य-मञ्जूषा

(वा० सं० वि० वि० की उत्तरमध्यमा-प्रथमखण्ड-परीक्षा में निर्धारित)

सङ्कलनकर्ता

आचार्य रमाशङ्कर पाण्डेय, एम० ए० (द्वितय)

हिन्दी-विभाग,

वाराणसेय संस्कृत-विश्वविद्यालय, वाराणसी

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी १

जगतः पितरौ वन्दे

कथ्य

भारत की अखण्ड-साहित्य-परम्परा को प्रस्तुत करनेवाली भारती हिन्दी की इस काव्य-मञ्जूषा में वरिष्ठ, तीक्ष्ण, सुवर्ण, दुर्वर्ण, रस, रीति, अमल रत्न, सार आदि का सञ्चय है। राष्ट्र-शक्ति के विकास में योग-प्रद ('चन्द' से 'दिनकर' तक की) व्यक्ति-सम्पदा को युवकों के हाथ सौंपकर आशा करता हूँ कि उनकी विवेक-वृद्धि और नैतिकता-पुष्टि होगी।

ज्ञान, गुरु-गम्य है; फिर भी सुकुमार-मति अध्येताओं के लिए इसे सर्वात्मना सुलभ करने का प्रयास अगले संस्करण में होगा।

रमाशङ्कर शास्त्री

तालिका

* ताराङ्कित पाठ परीक्षा में नहीं हैं।

मूल

हिन्दी साहित्य के इतिहास का स्वरूप प्रस्तुत करने के पहले हमें यह ध्यान रखना चाहिये कि हिन्दी का सम्बन्ध भारतीय संस्कृति, सभ्यता, धर्म, राजनीति और समाज से उसी प्रकार का है जिस प्रकार का सम्बन्ध यहाँ की मूलभाषा संस्कृत से। संस्कृत भाषा में प्रदेश-भेद से थोड़ा-बहुत अन्तर अवश्य हुआ था लेकिन वह प्राचीन काल में लोकभाषा थी। इस अमरवाणी ने समस्त देश को एक सूत्र में ग्रथित किया और इसी भारती में सामाजिक मस्तिष्क की अखण्ड चिन्तन-परम्परा व्यक्त हुई। साहित्य में सुरक्षित वाणी के लोक-व्यवहार से भिन्न होने पर कालान्तर में संस्कृत से ही प्रादुर्भूत जनभाषा 'प्राकृत' नाम से चली और साहित्य में इसके भी बँध जाने पर प्रादेशिक वैशिष्ट्य के साथ अपभ्रंशों का विकास हुआ। इस प्रकार विशिष्ट, साधारण और अपभ्रष्ट भाषाओं की सुदीर्घ परम्परा हिन्दी साहित्य के उदयकाल के पूर्व वर्तमान थी।

यद्यपि हिन्दी के विकास की कहानी मूलतः मध्यदेश के इतिहास से सम्बद्ध है, तथापि उक्त भाषाओं के दाय पर पनपनेवाली इस भाषा और इसके साहित्य का महत्त्व अखिलभारतीय है। हिन्दी साहित्य के इतिहास की रूपरेखा खींचनेवाले इतिहासकारों ने समस्त देशव्यापी अपभ्रंशों को मूल मानकर ही काल-विभाजन किया है। यद्यपि उस काल (विक्रम की सातवीं शती) की पर्याप्त साहित्यिक सामग्री उपलब्ध नहीं है, फिर भी प्राप्त धार्मिक ग्रन्थों के आधार पर अपभ्रंश साहित्य को हिन्दी साहित्य के विकास में योग देनेवाला अवश्य माना गया है, क्योंकि सातवीं से दसवीं शती तक सिद्धों की वाणियों का अविच्छिन्न प्रवाह था। इतना तो स्पष्ट ही है कि अपभ्रंशों के बाद भारत के विस्तृत क्षेत्र में व्यवहृत होनेवाली भाषा हिन्दी ही है। मिथिला से राजस्थान तक उदित होनेवाली उत्तर की इस भाषा ने अपना प्रचार दक्षिण तक किया। कालान्तर में व्रजी, अवधी और खड़ी के रूप में इसका फैलाव हुआ। अस्तु, गुजरात, महाराष्ट्र, बंगाल, राजस्थान और पंजाब प्रदेशों की प्रादेशिक विशेषताओं को लेकर

चलनेवाली जिस भाषा में साहित्यिक सम्पत्ति मिलती है उसी को पुरानी हिन्दी मानकर इतिहासकारों ने विचार किया है।

एक ओर इस पुरानी हिन्दी में जनपदीय साहित्य का और दूसरी ओर कवियों द्वारा शिष्ट साहित्य का निर्माण हुआ है। राजनीति और धर्म के प्रभाव के कारण समाज-पोषक साहित्य का निर्माण हुआ है। युगानुरूप एक या अनेक प्रवृत्तियों से साहित्य की विचारधारा प्रभावित हुई है और उसी को आधार मानकर विचारकों ने हिन्दी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन किया है। सहस्राब्दियों के जातीय जीवन की सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक प्रवृत्तियों का वहन करनेवाली हिन्दी के साहित्य का इतिहास एक सहस्र वर्षों का है। यदि इसका आरम्भ विक्रम सं० १००० माना जाय तो दो सहस्र विक्रमाब्द तक का साहित्य विवेच्य हो जाता है। अधोलिखित काल-विभाजन को ध्यान में रखते हुए हमें संक्षेपतः इतिहास को प्रस्तुत करना है।

१. आदिकाल (सं० १००० से १४०० तक)
२. पूर्वमध्यकाल (सं० १४०० से १७०० तक)
३. उत्तरमध्यकाल (सं० १७०० से १९०० तक)
४. आधुनिक काल (सं० १९०० से २००० तक)

हिन्दी साहित्य के प्रारम्भिक काल को सिद्ध-सामन्त-काल, चारण-काल, जय-काव्य-काल या वीरगाथा-काल कहा गया है। इस काल की परिचायिका अनेक कृतियाँ हिन्दी की परिधि के बाहर की हैं। इस काल की भाषा प्राकृताभास, अपभ्रंश, देशभाषा एवं पुरानी हिन्दी रही है। रचनायें दुहृत्थ या दोहा, चौपाई, गाथा, पद्धरी, छप्पय, कवित्त आदि छन्दों में हैं। विषय या वस्तु की दृष्टि से सिद्धों, वज्रयानियों, जैनों के साम्प्रदायिक तत्त्व-विवेचन या उपदेशों के साथ-साथ आश्रयदाताओं का प्रशंसात्मक इतिहास इस काल की रचनाओं में प्राप्त है। इस काल में ध्यान देने योग्य बात यही है कि तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक या धार्मिक परिस्थितियों के प्रभाव से धर्म, नीति, रति, उत्साह आदि सब प्रकार के भाव काव्य रचना में आये, पर यवन संघर्ष के प्रभाव से हिन्दी की प्रवृत्ति विशेषतः पराक्रम-प्रकाशक प्रबन्ध की ओर रही। चरितों को कहने

में चौपाई और दोहे की पद्धति पायी जाती है। धार्मिक या ऐतिह्य-प्रधान दोनों प्रकार की रचनाओं में सिद्धान्त-निरूपण और तत्त्वोपदेश मुख्य रूप से दोहों में है। कवि-कर्म के विधान का यही रूप भक्तिकाल का भी आदर्श रहा। संक्षेपतः आदिकाल का साहित्य उत्तरी भारत के जनमन को आन्दोलित करनेवाले साधकों, सिद्धों और चारणों की विचार-सम्पदा है।

सम्राट् हर्षवर्धन के अनन्तर राष्ट्रिय विशृङ्खलता के कारण बाह्य अभियान होने लगे। परिणाम-स्वरूप चौदहवीं शती तक मुसलमान शासक रूप में पूर्णतः प्रतिष्ठित हो गये। समाज में अरक्षा की भावना घर कर गयी। धर्म कर्म के बिना पङ्गु और भक्ति के भागने से भाव-हीन हो गया। सामान्य जनता रहस्य के फेर में पड़ी योग जगा रही थी। सामाजिक जीवन विच्छिन्न हो गया था। शिक्षा और स्वाध्याय के अभाव में अधिकांश दर्शन-हीन जन कर्मक्षेत्र से विरत हो गये थे। ऐसी स्थिति में क्रान्तदर्शी भक्त कवियों ने परिवर्तन के लिये प्राचीन जीवनादर्शों को काव्य के मनोरम साँचे में ढाल दिया। भारतीय इतिहास का यह पूर्वमध्यकाल है। सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक विकास या कलात्मक सृष्टि का यह वह काल है जब सम्पूर्ण भारत एक भाव तथा प्रभाव में आन्दोलित हो रहा था।

इतिहास बताता है कि दक्षिण भारत में पाँचवीं से नवीं शताब्दी तक भक्ति का स्रोत प्रवाहित हो चुका था। तमिलाचार्यों ने प्रपत्तिपूर्ण ऐकान्तिक धर्म को ज्ञान और कर्म से समन्वित कर दिया। ग्यारहवीं शती तक भक्तिधारा स्वतन्त्र गति से उत्तर भारत में फैल गयी। रामानुजाचार्य (ग्यारहवीं शती) से लेकर वल्लभाचार्य (सोलहवीं शती) तक जितने क्रान्तदर्शी धर्मदर्शी भक्तनायक [निम्बार्क (बारहवीं शती), मध्व (तेरहवीं शती), नामदेव (चौदहवीं शती), रामानन्द (पन्द्रहवीं शती)] हुए, उनके द्वारा लोक-कल्याण का मार्ग निकला और भक्ति के विविध रूपों को लेकर भक्त कवियों ने रचनाएँ कीं। एक ओर तो यवन धर्म के प्रचार द्वारा शासन के पोषण या राजकीय सत्ता के दृढ़ीकरण का प्रयास हो रहा था और दूसरी ओर शासक और शासित दोनों के लिये सामान्य भक्तिमार्ग निकालने की भावना भी काम कर रही थी। इतना तो स्पष्ट है कि

भाषा पर बाहरी प्रभाव पृथ्वीराज के समय से पड़ने लगा था पर भक्ति की विविधता के कारण नाना भाषाओं के शब्द खपते, पचते गये। भाषा का क्षेत्र व्यापक हो गया और भाव की दृष्टि से भक्ति की निर्गुण और सगुण धारायें सम्पूर्ण भारत में फैल गयीं। भक्ति में कीर्तन की प्रतिष्ठा के कारण छन्द रूपों की भी अधिकता हुई पर चरित या आख्यान काव्यों की रचना आदिकाल की तरह रही। भक्ति के देशव्यापी प्रभाव ने उत्तर-दक्षिण का समन्वय कर दिया। मार्गोपदेश की भिन्नता होते हुए भी सामाजिक विषमता को दूर करने का इस काल में विशेष प्रयत्न हुआ। सगुण और निर्गुण दोनों धाराओं में लोकोन्मुख सगुण धारा ही विशेष रूप से मलिनता दूर कर सकी। यदि आदिकाल के काव्य में लोक के उत्साह का उल्लास था तो पूर्वमध्यकाल का भक्तिकाव्य सर्वसामान्य भूमि प्रस्तुत करने वाला था। इस काल में संस्कृत साहित्य की पुराण सम्पदा का कवियों ने जितना उपयोग किया उतना किसी युग में नहीं। भारत की भक्ति के निगमागममूलक रहने से प्रवृत्तिपरक और निवृत्तिपरक दोनों प्रकार की रचनायें हुईं।

पूर्वमध्यकाल के भक्ति-प्रधान (लोकनिष्ठ और लोकबाह्य दोनों प्रकार की भाव-सम्पदा से पुष्ट) प्रौढ़ काव्यों के अनन्तर रीतिकाव्य की अखण्ड परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी के काव्य-निरूपण से चली। यों तो केशवदास ही ने काव्य-रीति का समावेश पचास वर्ष पूर्व कर दिया था पर काव्य-जगत् में उनका अनुसरण नहीं हुआ। सं० १७०० से रीतिकाव्य का सम्यक् प्रसार हुआ। समृद्धि, वैभव या विलासिता के युग में लोकैषणा या भोग-लिप्सा को लेकर कला की साधना हुई। संस्कृत के काव्य-शास्त्र के सिद्धान्तों का पिष्टपेषण हुआ। गद्य के अविकास और पद्य के परिधि-लाघव के कारण सूक्ष्म सैद्धान्तिक विवेचन न हो सका। रीतिप्रधान कवियों में आचार्यत्व और कवित्व का एकत्र योग होते हुए भी इस युग में संस्कृत साहित्य की तरह सूक्ष्म वाद-विवेचन नहीं हुआ। हाँ, शृंगार की अभूतपूर्व लक्ष्य-सिद्धि इन कवियों में दीख पड़ती है। राजनीतिक स्थिति, सामन्तवादी समाज और राज्याश्रय के कारण परिमित क्षेत्र में ही रीति-कालीन कवि-पुङ्गवों ने चौकड़ी भरी या चर्वित-चर्वण किया। इससे जीवन और

जगत् के नाना रहस्यों का उद्घाटन न हो सका। रति-प्रेरक रीतिकवियों के प्रिय छन्द कवित्त और सवैया रहे। व्रजी और अवधी के मिश्रण के साथ-साथ अरबी और फारसी के शब्द भी इस काल की रचनाओं में समाविष्ट हो गये और काव्यभाषा व्यवस्थित न होकर पोङ्गल (खिचड़ी) हो गयी।

आधुनिक काल का सम्बन्ध अंग्रेजी राज्य की स्थापना से है। भारत की राजनीतिक स्थिति में (औरङ्गजेब के समय से ही) बड़ी क्षिप्र गति से परिवर्तन होने लगा। अंग्रेजी खेमा कलकत्ते से दिल्ली तक तन गया। अंग्रेजी राज्य के विस्तार में जीवन की नवीन परिस्थितियाँ या आवश्यकतायें सामने आने लगीं। उन्नीसवीं शती में सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिवर्तनों के कारण नवजीवन का स्पन्दन हुआ। एक ओर तो प्रारम्भ में रीतिकाव्य के माध्यम से चली व्रजी का प्रचार बना रहा और दूसरी ओर ऐतिहासिक कारणों के फल-स्वरूप हिन्दी साहित्य का प्रधान अंग 'गद्य' बन गया। इस युग की चेतना समन्वय, आत्म-गरिमा, अध्यात्म-रक्षा और व्यापक राष्ट्रियता रही। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में काव्यभाषा व्रजी की प्रधानता रही और साथ ही खड़ी बोली के गद्य की स्थापना हुई जिसमें अंग्रेजी शब्द भी आत्मसात् होने लगे। ललित भाव के साहित्य का रचना-काल उन्नीसवीं शती का उत्तरार्द्ध और बीसवीं शती का पूर्वार्द्ध है और इसके प्रतिष्ठापक हैं बाबू हरिश्चन्द्र। आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदी के समय तक भाषा का परिष्करण और परिमार्जन हुआ। प्रथम महायुद्ध से लेकर विक्रम की द्वितीय सहस्राब्दी तक के खड़ी बोली के काव्य में राष्ट्रिय संघर्षात्मक अभिव्यक्ति, नवीन मानव-दर्शन और स्वच्छन्द विचार परम्परा के दर्शन होते हैं। आधुनिक युग का यह भाग छायावाद या रहस्यवाद का युग कहा जाता है। इसके बाद मार्क्सवादी विचारधारा से साहित्य का क्षेत्र स्पृष्ट हुआ। कहने की आवश्यकता नहीं कि यह लोकायती प्रगतिशीलता, भी भारतीय आदर्शों को अपनाकर ही साहित्य में चली।

हिन्दी-
काव्य-मञ्जूषा

चन्दबरदाई

(बारहवीं शती)

(ईश-ऐश्वर्य)

प्रनम्म प्रथम मम आदि देव ।
ऊंकार सव्द जिन करि अछेव[1] ॥
निरकार मध्य साकार कीन ।
मनसा बिलास सह[2] फल फलीन ॥
बरनयौ आदि-करता अलेख ।
गुनरहित गुननि नहि रूप रेख ॥
जिहि रचे सुरग भू सत पताल ।
जम ब्रह्म इन्द्र रिसि लोकपाल ॥
असि-लक्ख-चार रच जीव-जंत ।
बरनंत ते नहीं लहौं अंत ॥

× × ×

करि सकै न कोइ अग्याहि भंग ।
धरि हुकुम सीस दुख सहै अंग ॥
दिनमान देव रवि रजनि भोर ।
उग्गइ वनैं प्रभु हुकुम जोर ॥
ससि सदा राति अग्या अधीन ।
उग्गैं अकास होय कलाहीन ॥
परिमान अप्प लंघै न कोइ ।
करै सोइ क्रम्म[3] प्रभु हुकुम जोइ ॥
बरनयौ वेद ब्रह्मा अछेह[4] ।
जल थलह पूरि रह्यौ देह-देह ॥

---

१. छिद्र-रहित, निर्दोष। २. शक्ति, साथ, से । ३. कर्म । ४. निरन्तर ।

विद्यापति

(चौदहवीं शती उत्तरार्ध)

गङ्गा-स्तुति

(१)

बड़ सुख सार पाओल तुअ[1] तीरे ।
छोड़इत[2] निकट नयन बह नीरे ॥
कर जोरि विनमओं बिमल तरंगे ।
पुन दरसन होए पुनमति[3] गंगे ॥
एक अपराध छेमव मोर जानी ।
परसल माय पाय[4] तुअ पानी ॥
कि करव जप तप जोग धेआने ।
जनम कृतारथ एकहि सनाने ॥
भनइ विद्यापति समदओं[5] तोही ।
अन्त काल जनु बिसरह मोही ॥

× × ×

गौरी-शङ्कर

(२)

आजु नाथ एक वर्त[6] मोहि सुख लागत हे ।
तोहें सिव धरि नट वेष कि डमरू बजाएव हे ॥
भल न कहल गउरा रउरा आजु सु नाचव हे ।
सदा सोच मोहि होत कवन बिधि बाँचव हे ॥

---

१. तव, तुम्हारे । २. छोड़ते हुए । ३. पुण्यमति, पवित्र बुद्धि वाली । ४. पैर (से) । ५. समदन या समर्पण करता हूँ; प्रार्थना करता हूँ । ६. व्रत ।

जे जे सोच मोहि होत कहा समुझाएव हे ।
रउरा जगत के नाथ कवन सोच लागए हे ॥
नाग ससरि[१] भूमि खसत[२] पुहुमि[३] लोटायत हे ।
कार्त्तिक पोसल मजूर[४] सेहो धरि खायत हे ॥
अमिय चूइ भूमि खसत बघम्बर जागत हे ।
होत बघम्बर बाघ बसह[५] धरि खायत हे ॥
टूटि खसत रुद्राछ मसान जगावत हे ।
गौरी कहँ दुख होत विद्यापति गावत हे ॥

पद

(३)

तातल[६] सैकत बारि बिन्दु सम सुत मित रमनि समाजे ।
तोहे बिसारि मन ताहे समरपितु अब मझु[७] होब कोन काजे ॥
माधव हम परिनाम निरासा ।
तुहुँ जगतारन दीन दयामय अतए[८] तोहर बिसवासा ॥
आध जनमु हम नींदे गमायनु जरा सिसु कत[९] दिन गेला ।
निधुवन रमनि-रभस-रंग मातनु[१०] तोहे भजब कोन बेला ॥
कत चतुरानन मरि मरि जाओत न तुअ आदि अवसाना ।
तोहे जनमि पुनि तोहे समाओत सागर लहरि समाना ॥
भनइ विद्यापति सेष[११] समन[१२]-भय, तुअ बिन गति नहिं आरा[१३] ।
आदि अनादिक नाथ कहाओसि अब तारन भार तोहारा ॥

× × ×

(४)

माधव, कत तोर करब बड़ाई ।
उपमा तोहर कहब ककरा[१४] हम कहितहुँ अधिक लजाई ॥

---

१. सरक कर । २. गिरना । ३. पृथ्वी । ४. मोर । ५. बैल (वृषभ) । ६. तप्त । ७. मैं, मध्य में । ८. इतना ही, अतएव । ९. कितने । १०. मतवाला था । ११. शेष । १२. शमन, (समाप्ति), यम । १३. और, अन्य । १४. किससे, कथंकार, कैसे ।

जौं श्रीखंड-सौरभ अति दुरलभ तौं पुनि काठ कठोर ।
जौं जगदीस निसाकर तौं पुनि एकहि पच्छ उजोर ॥
मनि समान औरो नहिं दोसर तनिकर[1] पाथर नामे ।
कनक कदलि छोट लज्जित भै रह[2] की कहु ठामहि ठामे[3] ॥
तोहर सरिस एक तोहें माधव मन होइछ[4] अनुमान ।
सज्जन जन सौं नेह कठिन थिक[5] कवि विद्यापति भान[6] ॥

(५)

लोचन धाए[7] फेधाएल[8], हरि नहिं आएल रे ।
सिव सिव जिवओो न जाए, आसे अरुझाएल[9] रे ॥
मन करे तहाँ उड़ि जाइअ, जहाँ हरि पाइअ रे ।
पेम-परसमनि[10] जानि, आनि उर लाइअ रे ॥
सपनहु संगम पाओल, रंग बढाओल रे ।
से मोरा विहि[11] विघटाओल[12], निंदओ हेराओल रे ॥
भनइ विद्यापति गाओल, धनि[13] धइरज[14] धर रे ।
अचिरे मिलत तोहि वालमु[15], पुरत मनोरथ रे ॥

(६)

आएल रितुपति-राज वसंत । धाओल अलिकुल माधवि-पंथ ।
दिनकर किरन भेल[16] पौगंड[17] । केसर कुसुम धएल[18] हेम-दंड ॥
नृप-आसन नव पीठल[19] पात । [20]कांचन-कुसुम छत्र धरु माथ ।
मौलि रसाल मुकुल भेल ताय[21] । समुखहि कोकिल पंचम गाय ॥

---

१. उसका । २. हुआ रहता है । ३. स्थान स्थान पर । ४. होता है । ५. है । ६. कहता है । ७. दौड़कर (दौड़ते दौड़ते) । ८. फेनिल हुए, थक गये । ९. अवरुद्ध, उलझे हुए । १०. प्रेम-रूपी पारस मणि । ११. विधि, ब्रह्मा । १२. विघटित किया, नष्ट किया । १३. धनिका या धनीका (युवती) । १४. धैर्य । १५. वल्लभ (प्रिय) । १६. हुआ । १७. कैशोर, कुछ कुछ तीव्र । १८. धारण किया । १९. पिठर (मोथा) । २०. धतूरे का फूल, चम्पा, पद्मकेसर, सुनहला फूल । २१. उसके ।

सिखिकुल नाचत अलिकुल यंत्र[१]। द्विज कुल आन पढ़ आसिष मंत्र ।
चंद्रातप उड़े कुसुम पराग। मलय पवन सह भेल अनुराग ।।
कुंदवल्ली तरु धएल निसान[२]। पाटल तून असोक-दल वान ।
किंसुक लवँगलता एकसंग। हेरि सिसिर आगे दल भंग ।।
सैन साजल मधुमखिका कूल[३]। सिरिसक सबहु कएल निरमूल ।
उधारल[४] सरसिज पाओल प्रान। निज नव दल करु आसन दान ।।
नव वृन्दावन राज बिहार। विद्यापति कह समयक सार ।

---

१. वाद्य यन्त्र । २. पताका । ३. कुल । ४. उद्धार किया ।

कबीरदास

(पन्द्रहवीं शती)

(साखी)

गुरु गोबिन्द दोऊ खड़े, काके लागौं पाय ।
बलिहारी गुरु आपनो, गोबिन्द दियो मिलाय ॥ १ ॥
जब मैं[1] था तब गुरु नहीं, अब गुरु हैं हम नाहिं[2] ।
प्रेम गली अति साँकरी, तामें दो न समाहिं ॥ २ ॥
यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान ।
सीस दिये जो गुरु मिले, तो भी सस्ता जान ॥ ३ ॥
सब धरती कागद करूँ, लेखनि सब बन-राय ।
सात समुंद की मसि करूँ, गुरु गुन लिखा न जाय ॥ ४ ॥
सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपकार ।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार ॥ ५ ॥
ग्यान प्रकासा गुरु मिल्या, सो जनि बीसरि जाइ ।
जब गोविंद किरिपा करी, तब गुरु मिलिया आइ ॥ ६ ॥
माया दीपक नर पतँग, भ्रमि भ्रमि इवै पड़ंत ।
कह कबीर गुरु ग्यान थैं, एक आध उबरंत ॥ ७ ॥
गुरु गोविंद तौ एक है, दूजा यहु आकार[3] ।
आपा[4] मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार ॥ ८ ॥

× × ×

दुख में सुमिरन सब करै, सुख में करै न कोय ।
जो सुख में सुमिरन करै, तो दुख काहे होय ॥ ९ ॥

---

१. अहंभाव । २. द्वैत बुद्धि का नाश । ३. (जीवात्मा) रूप । ४. अहंभाव

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर ।
करका मनका डारि दे, मन का मनका फेर ॥ १० ॥
माला तो कर में फिरै, जीभ फिरै मुख माहि ।
मनुवाँ तो चहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहि ॥ ११ ॥
मन के हारे हार है, मन के जीते जीत ।
परमातम को पाइये मन ही के परतीत[१] ॥ १२ ॥
मन गोरख मन गोबिंदो, मन ही औघड़ होइ ।
जौ मन राखै जतन करि, तौ आपै करता सोइ ॥ १३ ॥
कबीर मन पंखी भया, बहुतक चढ़ा अकास[२] ।
उहां हीं तै गिरि पड़ा[३], मन माया के पास ॥ १४ ॥
मन मथुरा दिल द्वारका काया कासी जान ।
दस द्वारे का देहरा[४] तामे जोति पिछान[५] ॥ १५ ॥

× × ×

प्रीति जो लागी घुल गयी, पैठि गयी मन माहिं ।
रोम रोम पिउ पिउ करै, मुख की सरधा नाहिं ॥ १६ ॥
प्रेम न वाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय ।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥ १७ ॥
जा घट प्रेम न संचरै, सो घट जान मसान ।
जैसे खाल लोहार की, साँस लेत बिनु प्रान ॥ १८ ॥
लाली[६] मेरे लाल[७] की, जित देखौं तित लाल ।
लाली देखन मैं गयी, मैं भी हो गइ लाल[८] ॥ १९ ॥
तेरा साईं तुज्झ में, ज्यों पुहुपन में बास ।
कस्तूरी का मिरग ज्यों फिरि फिरि ढूंढ़ै घास ॥ २० ॥

---

१. प्रतीति, दृढ़ विश्वास । २. समाधिस्थ हुआ । ३. समाधि खुल गयी । ४. देह-मन्दिर । ५. पहचान । ६. सौन्दर्य रूप प्रकाश । ७. ईश्वर । ८. रक्त, तन्मय ।

ज्यों तिल माहीं तेल है, ज्यों चकमक में आगि ।
तेरा साईं तुज्झ में, जागि सके तो जागि ॥ २१ ॥
आतम अनुभव ज्ञान की जो कोइ पूछै बात ।
सो गूँगा गुड़ खाइकै कहै कौन मुख स्वाद ॥ २२ ॥
माया मुई न मन मुवा, मरि मरि गया सरीर ।
आसा त्रिष्णां ना मुई, यौं कहि गया कवीर ॥ २३ ॥
कवीर इस संसार कौ, समझाऊँ कै बार ।
पूँछ जु पकड़ै भेद की, उतरा चाहै पार ॥ २४ ॥
मैं अपराधी जनम का, नख सिख भरा विकार ।
तुम दाता दुख भंजना, मेरी करो उवार ॥ २५ ॥
आछे दिन पाछे गये गुरु से किया न हेत ।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियां चुग गयीं खेत ॥ २६ ॥
कहना था सो कह दिया अब कछु कहा न जाय ।
एक गया दूजा रहा[1] दरिया[2] लहर[3] समाय ॥ २७ ॥
सुन्न सरोवर मीन मन नीर तीर सब देव ।
सुधा - सिंधु सुख विलसहीं विरला जानै भेव ॥ २८ ॥
छीर रूप सतनाम है नीर रूप व्यवहार[4] ।
हंस रूप कोइ साध है तत[5] का छानन हार ॥ २९ ॥
हेरत हेरत हेरिया रहा कवीर हिराय[6] ।
बुंद[7] समानी समुँद[8] में, सो कत हेरी जाय ॥ ३० ॥
गगन गरजि बरसै अमी[9] बादल गहिर गँभीर ।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी[10] भीजै दास कबीर ॥ ३१ ॥
कमोदनी जलहरि वसै, चंदा वसै अकास ।
जो जाही का भावता, सो ताही कै पास ॥ ३२ ॥

---

१. परिणाम, अन्त । २. अंशी । ३. अंश । ४. प्रपञ्च । ५. तत्त्व । ६. भूल गया, खो गया । ७. जीवात्मा । ८. परमात्मा । ९. अमृत । १०. ईश्वरीय ज्योति ।

पद

(१)

माया महा ठगिनि हम जानी ।
[1]निरगुन (तिरगुन) फाँस लिये कर डोलै बोलै मधुरी बानी ॥
केसव के कमला ह्वै बैठी भव[2] के भवन भवानी ।
पंडा के मूरति ह्वै बैठी तीरथ में भई पानी ॥
जोगी के जोगिनि ह्वै बैठी राजा के घर रानी ।
काहू के हीरा ह्वै बैठी काहू के कौड़ी कानी ॥
भक्तन के भक्तिन ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी ।
कहै कबीर सुनो हो संतो यह सब अकथ कहानी ॥

× × ×

(२)

मन न रँगाए रँगाए जोगी कपरा ।
आसन मारि मँदिर में बैठे नाम छाड़ि पूजन लागे पथरा ।
कनवाँ फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौलें दढ़िया बढ़ाय जोगी बनि गैलैं बकरा ।
जंगल जाय जोगी धुनिया रमौलें काम जराय जोगी बनि गैलैं हिजरा ।
मथवा मुँड़ाय जोगी कपड़ा रँगौलें गीता बाँचि के होइ गैलैं लवरा ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो जम दरवजवाँ बँधल जैवे पकरा ।

× × ×

(३)

झीनी झीनी बीनी चदरिया[3] ।
काहे कै ताना काहे कै भरनी, कौन तार से बीनी चदरिया ।

---

१. बिना रस्सी का; (तिरगुन = तिहरी बटी हुई रस्सी, त्रिगुणात्मिका) ।
२. शिव । ३. शरीर ।

इंगला[१] पिंगला[२] ताना भरनी, सुखमन[३] तार से बीनी चदरिया ।
आठ कँवल[४] दल चरखा डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया ।
साईं को सियत मास दस लागै, ठोक ठोक कै बीनी चदरिया ।
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़े, ओढ़ि कै मैली कीनी चदरिया ।
दास कबीर जतन से ओढ़ी ज्यों की त्यों धर दीनी चदरिया ।

(४)

[५]घूँघट का पट खोल रे तोहें पीव मिलेंगे ।
घट घट में वह साईं रमता, कटुक वचन मत बोल रे ।
धन जोवन को गरब न कीजै, झूठा पँच रँग चोल[६] रे ।
सुन्न महल में[७] दियना[८] बारिले, आसन[९] सों मत डोल रे ।
जोग जुगुत सों [१०]रंगमहल में, पिय पायो अनमोल रे ।
कहैं कबीर आनन्द भयो है बाजत [११]अनहद ढोल रे ।

× × ×

(५)

पानी बिच मीन पियासी ।
मोहि सुनि सुनि आवत हाँसी ।।
आतम ग्यान विना सब सूना, क्या मथुरा क्या कासी ।
घर में बस्तु धरी नहिं सूझै, बाहर खोजन जासी ।।

---

१. मेरुदण्ड की बाईं ओर की अमृतप्रवाहिनी नाड़ी (इसका अन्त नाक की दाहिनी ओर होता है)। २. मेरुदण्ड की दाहिनी ओर की विषवाहिनी नाड़ी (इसका अन्त नाक के बाईं ओर होता है)। ३. इड़ा पिङ्गला के बीच (मेरुदण्ड के समानान्तर)। ४. हृदय-पद्मरूपी आठ दलों वाला चरखा। ५. माया, आवर , अज्ञान पट। ६. पञ्चतत्त्व का शरीर। ७. ब्रह्मरन्ध्र। ८. ज्ञान-दीप। ९. स्थिरासन। १०. सुरति कमल। ११. अनाहत-नाद ब्रह्मरन्ध्र में होता है।

मृग की नाभि माहिं कस्तूरी, वन वन फिरत उदासी ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, सहज मिले अबिनासी ॥

× × ×

(६)

पायो सतनाम गरे कै हरवा।
साँकर खटोलना[१] रहनि हमारी दुबरे दुबरे पाँच[२] कहरवा ।
ताला कुंजी हमैं गुरु दीन्ही जब चाहौं तब खोलौं किवरवा ॥
प्रेम प्रीति की चुनरी हमारी जब चाहौं तब नाचौं सहरवा[३] ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो बहुर न ऐबै एही नगरवा ॥

---

१. शरीर । २. ज्ञानेन्द्रियाँ । ३. संसार ।

सूरदास

(सोलहवीं शती)

विनय

(१)

चरन कमल वंदौं हरि-राई ।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, अंधरे कौ सब कछु दरसाई ॥
बहिरौ सुनै, गूँग पुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई ।
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार वंदौं तिहिं पाई ॥

(२)

मेरो मन अनत[1] कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज कौ पंछी पुनि जहाज पै आवै ॥
कमलनैन कौ छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै ।
परम गंग कौ छाँड़ि पियासौ दुर्मति कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अंबुज-रस चाख्यौ क्यों करील-फल खावै ।
सूरदास प्रभु कामधेनु तजि छेरी[2] कौन दुहावै ॥

(३)

प्रभु ! मेरे अवगुन चित न धरौ ।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो, अपने पनहिं[3] करौ ॥
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परौ ।
यह दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ[4] ॥
इक नदिया इक नार[5] कहावत, मैलोहि नीर भरौ ।
जब मिलिकै दोउ एक बरन भये, सुरसरि नाम परौ ॥

---

१. अन्यत्र । २. बकरी । ३. प्रतिज्ञा पूर्ति करो । ४. शुद्ध, खरा । ५. नाला

एक जीव इक ब्रह्म कहावत, सूर स्याम झगरौ[1] ।
अबकि बेरि मोहिं पार उतारौ, नहिं पन[2] जात टरौ ॥

(४)

अविगत[3] गति कछु कहत न आवै ।
ज्यों गूगैं मीठे फल कौ रस अंतरगत ही भावै ॥
परम स्वाद सबही जु निरन्तर अमित तोष उपजावै ।
मन बानी कौ अगम अगोचर, सो जानै जो पावै ॥
रूप-रेख-गुन-जाति-जुगु ति-विनु निरालंब मन चक्रित धावै ।
सब विधि अगम्य विचारहिं तातैं सूर सगुन लीला पद गावै ॥

शिशु-लीला

(१)

कर गहि पग अँगुठा मुख मेलत[4] ।
प्रभु पौढ़े पालने अकेले हरषि हरषि अपने रँग खेलत ॥
सिव सोचत, बिधि बुद्धि बिचारत वट बाढ़यो सागर जल झेलत ।
विडरि[5] चले घन प्रलय जानिकै दिगपति दिगदन्तिय न सकेलत[6] ॥
मुनि मन भीत भए भव-कम्पित सेस सकुचि सहसौ फन फेलत ।
उन ब्रजवासिन बात न जानी समुझे सूर सकट पगु पेलत[7] ॥

(२)

सोभित कर नवनीत लिये ।
घुटुरनि चलत रेनु तन मंडित मुख दधि लेप किये ॥
चारु कपोल लोल लोचन गोरोचन तिलक दिये ।
लट लटकनि मनु मत्त मधुपगन मादक मदहिं पिये ॥

१. विवाद । २. प्रतिज्ञा, प्रण । ३. अव्यक्त, अज्ञेय । ४. डालते हैं । ५. तितर-बितर हो चले । ६. स्थिर नहीं कर पा रहे हैं । ७. ढकेलते हैं । (शकटासुर-बध और प्रलयकालीन भगवत्स्वरूप । "करारविन्देन पदारविन्दं…" का सङ्केत) ।

कठुला[1] कंठ, बज्र[2] केहरि नख राजत रुचिर हिये ।
धन्य सूर, एकौ पल यह सुख, का सतकल्प जिये ॥

(३)

सिखवत चलन जसोदा मैया ।
अरबराय[3] कर पानि गहावत डगमगाय धरनी धरि पैयाँ ॥
कबहुँक सुन्दर बदन बिलोकति उर अनंद भरि लेति वलैया ।
कबहुँक बल को टेरि[4] बुलावति इहि आँगन खेलौ दोउ भैया ॥
कबहुँक कुलदेवता मनावति चिरजीवौ मेरो बाल कन्हैया ।
सूरदास प्रभु सब सुखदायक अति प्रताप बालक नंदरैया ॥

(४)

मैया कबहिं बढ़ेगी चोटी ।
किती बार मोहिं दूध पियत भइ यह अजहूँ है छोटी ॥
तू जो कहति बल की वेनी ज्यों ह्वैहै लाँबी मोटी ।
काढ़त गुहत नहावत पोंछत नागिन सी भ्वैं लोटी ॥
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी ।
'सूर'-श्याम चिरजीवौ दोऊ हरि हलधर की जोटी ॥

(५)

मैया, मोहि दाऊ बहुत खिझायो ।
मोसो कहत मोल को लीनो[5] तोहि जसुमति कब जायो[6] ॥
कहा कहौं यहि रिसकै मारे खेलन हौं नहिं जात ।
पुनि पुनि कहत कौन है माता को है तुमरो तात ? ॥
गोरे नन्द जसोदा गोरी तुम कत स्याम सरीर ।
चुटकी दै दै हँसत ग्वाल सब सिखै देत बलबीर ॥

---

१. बजरबट्टू की माला । २. हीरा । ३. घबड़ाकर । ४. पुकारकर । ५. दाम देकर खरीदा हुआ । ६. उत्पन्न किया ।

तू मोहीं कौ मारन सीखी दाउहिं कबहुँ न खीझै ।
मोहन को मुख रिस समेत लखि जसुमति सुनि सुनि रीझै ॥
सुनहु कान्ह बलभद्र चबाई[1] जनमत ही को धूत ।
सूरस्याम मों गोधन की सौं[2] हौं माता, तू पूत ॥

(६)

मैया मोरी, मैं नाहीं दधि खायौ ।

ख्याल परैं ये सखा सबै मिलि मेरैं मुख लपटायौ ॥
देखि तुहीं सींके पर भाजन[3] ऊँचैं पर लटकायौ ।
तुहीं निरखि नान्हें कर अपने मैं कैसें करि पायौ ॥
मुख दधि पोंछि कहत नँदनंदन दोना पीठ दुरायो[4] ।
डारि साँटि, मुसुकाइ तबहिं गहि सुत को कंठ लगायौ ॥
बाल-बिनोद-मोद मन मोह्यौ भगति प्रताप दिखायौ ॥
सूरदास प्रभु जसुमति कै सुख सिव बिरंचि बौरायौ ॥

भ्रमर-गीत

(१)

निरगुन कौन देस को बासी ?

मधुकर हँसि समुझाय, सौंह दै बूझति[5], साँच, न हाँसी ॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी ।
कैसो बरन, भेस है कैसो, केहि रस में अभिलासी ॥
पावैगो पुनि कियो आपनो जो रे कहैगो गाँसी[6] ।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठग्यो-सो सूर सबै मति नासी[7] ॥

---

१. चुगलखोर । २. सौगंध । ३. बर्तन (दही का) । ४. छिपाये । ५. सौगन्ध देकर जिज्ञासा करती हैं । ६. चुभने वाली बात, व्यङ्गय । ७. नष्ट हो गयी ।

(२)

आयौ घोष बड़ो ब्यौपारी ।
लादि खेप[1] गुन ग्यान जोग की ब्रज में आय उतारी ॥
फाटक[2] दै कै हाटक[3] माँगत भोरो[4] निपट सुधारी[5] ।
धुरही[6] तें खोटो खायौ है[7] लिये फिरत सिर भारी ॥
इनके कहे कौन डहकावै[8] ऐसी कौन अनारी ।
अपनौ दूध छाँड़ि को पीवै खार कूप को बारी ॥
ऊधौ जाहु सबारै[9] ह्याँ तैं वेगि गहरु[10] जनि लावहु ।
मुँह माँगौ पैहौ सूरज-प्रभु साहहिं[11] आनि देखावहु ॥

(३)

ऊधो मन तौ एकै आहि ।
सो तौ हरि लै संग सिधारे, जोग सिखावत काहि ॥
सुनु सठ कुटिल-बचन रस-लंपट अवलनि तन धौं चाहि[12] ।
अब काहे कौ लौन[13] लगावत, बिरह-अनल कैं दाहि ॥
परमारथ उपचार कहत हौ, बिरह-बिथा है जाहि ।
जाकौं राज-रोग कफ ब्यापत, दही खवावत ताहि ॥
सुन्दर स्याम सलोनी मूरति, पूरि रही हिय माहिं ।
सूर ताहि तजि निरगुन सिंधुहिं कौन सकै अवगाहि ॥

(४)

उर में माखन चोर गड़े ।
अब कैसेहु निकसत नहिं ऊधो तिरछै ह्वै जु अड़े ॥

---

१. बोझ । २. फटकन, अनाज का कूड़ा । ३. सोना । ४. भोला ५. सीधी । ६. प्रारम्भ से । ७. बेइमानी की कमाई खायी है । ८. ठगाये ९. शीघ्र । १०. देर । ११. मालिक (श्रीकृष्ण) । १२. शरीर की ओर तो देखो १३. लवण ।

जदपि अहीर जसोदानन्दन तदपि न जात छँड़े ।
वहाँ बने जदुबंस महाकुल हमहिं न लगत बड़े ॥
को वसुदेव, देवकी है को ना जानैं औ बूझैं ।
सूर स्याम सुन्दर विनु देखै और न कोई सूझैं ॥

(५)

अँखियाँ हरि-दरसन की भूखी ।
कैसे रहैं रूप-रस-राँची[१] ये बतियाँ सुनि रूखी ॥
अवधि गनत इक टक मग जोवतिं तब एती नहिं झूँखी[२] ।
अब इन जोग संदेसन ऊधो अति अकुलानी दूखी ॥
चारक[३] वह मुख फेरि दिखाओ दुहि पय पियत पतूखी[४] ।
सूर सिकत[५] हठि नाव चलावो ये सरिता हैं सूखी ॥

(६)

सँदेसनि मधुवन-कूप भरे ।
जो कोउ पथिक गयो है ह्याँते फिर नहिं अवन करे[६] ॥
कै वै स्याम सिखाय समोधे[७] कै वै बीच मरे ।
अपने नहिं पठवत नँदनन्दन हमरेउ फेरि धरे ॥
मसि खूँटी,[८] कागर[९] जल-भीजे, सर[१०] दौ[११] लागि जरे ।
पाती लिखें कहो क्योंकरि[१२] जो पलक कपाट अरे[१३] ॥

(७)

आजु घनस्याम की अनुहारि[१४] ।
उनै आये[१५] साँवरो सखि लेहि रूप निहारि ॥

---

१. रक्त, आसक्त । २. पछतायीं । ३. एकबार । ४. पतुकी, हंडी (दूध दूहने का बर्तन) । ५. सिकता, बालू । ६. लौटे । ७. समझा बुझा दिया । ८. खतम हो गयी । ९. कागद । १०. सरपत, सरकण्डा । ११. दावाग्नि १२. कैसे । १३. अड़ा दिया है, बन्द कर दिया है । १४. अनुकरण कर । १५. उमड़घुमड़ कर आये ।

इन्द्र धनुष मनों पीत-वसन-छवि, दामिनि दसन बिचारि ।
जनु बग-पाँति माल मोतिन की, चितवत चित लै हारि ॥
गरजत गगन गिरा गोविंद[1] की सुनत नयन भरे बारि ।
सूरदास गुन सुमिरि स्याम के विकल भईं ब्रज नारि ॥

(८)

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो ।
प्रीति पतंग करी पावक सौं, आपै प्रान दह्यो ॥
अलि-सुत[2] प्रीति करी जल-सुत[3] सौं, सम्पुट माँझ[4] गह्यो ।
सारंग[5] प्रीति करी जु नाद सौं, चलत न कछू कह्यो ।
सूरदास प्रभु बिनु दुख पावत, नैनन नीर बह्यो ॥

(९)

उधौ मन माने की बात ।
दाख[6] छुहारा छाँड़ि अमृत-फल[7], विष-कीरा विष खात ॥
जौ चकोर कौ देइ कपूर कोउ, तजि, अंगार अघात ।
मधुप करत घर कोरि[8] काठ मैं, बँधत कमल कै पात ॥
ज्यौं पतंग हित जानि आपनों दीपक सौं लपटात ।
सूरदास जाकौ मन जासौं सोई ताहि सुहात ॥

(१०)

ऊधो जोग[9] जोग[10] हम नाहीं ।
अबला सार-ज्ञान कहा जानैं कैसे ध्यान धराहीं ॥
ते ये मूँदन नैन कहत हैं हरि-मूरति जा माहीं ।
ऐसी कथा कपट की मधुकर हमतें सुनी न जाहीं ॥

---

१. महापुरुष (श्रीकृष्ण) की मन्द्रध्वनि का सङ्केत । २. भ्रमर । ३. कमल, जलज । ४. मध्य, में । ५. मृग । ६. द्राक्षा, अंगूर । ७. नाशपाती । ८. काटकर । ९. योग । १०. योग्य ।

स्रवन चीर अरु जटा बँधावहु[1] ये दुख कौन समाहीं ।
चंदन तजि अँग भस्म बतावत, विरह-अनल अति दाहीं ॥
जोगी भरमत जेहि लगि भूले, सो तो है अपु[2] माहीं ।
सूरदास तें टरें न पल छिन ज्यों घट[3] ते परछाहीं ॥

(११)

ऊधौ इतनी कहियौ जाइ ।
अति कृस गात भईं ये तुम बिन परम दुखारी गाइ ॥
जल समूह बरसतिं दोउ अँखियाँ, हूँकति[4] लीन्हे नाऊँ ।
जहाँ जहाँ गोदोहन कीन्हौ, सूँघति सोई ठाऊँ[5] ॥
परति पछार खाइ[6] छिन ही छिन, अति आतुर ह्वै दीन ।
मानहुँ सूर काढ़ि डारी हैं, वारि-मध्य तैं मीन ॥

(१२)

ऊधौ मोहिं ब्रज बिसरत नाहीं ।
हंस-सुता[7] की सुन्दर कगरी, अरु कुंजन की छाँहीं ॥
वै सुरभी, वै बच्छ दोहनी, खरिक[8] दुहावन जाहीं ।
ग्वाल-बाल मिलि करत कुलाहल, नाचत गहि गहि बाँहीं ॥
यह मथुरा कंचन की नगरी, मनि मुक्ताहल[9] जाहीं ।
जबहिं सुरति[10] आवति वा सुख की, जिय उमगत, तन नाहीं[11] ॥
अनगन भाँति करी बहु लीला, जसुदानंद निबाहीं ।
सूरदास प्रभु रहे मौन ह्वै, यह कहि कहि पछिताहीं ॥

---

१. कनफटे योगियों का बाना । २. आत्म । ३. शरीर । ४. हुंकृति करती हैं, रँभाती हैं । ५. स्थान । ६. बेहोश होकर । ७. सूर्य की कन्या, यमुना । ८. गोठ, तृणनिर्मित बाड़ा । ९. मुक्ताफल (मोती) । १०. ध्यान, याद, स्मृति । ११. आनन्द जनित आत्मविस्मृति ।

मलिक मुहम्मद जायसी

(सोलहवीं शती उत्तरार्ध)

स्तुति-खण्ड

(पद्मावत)

कीन्हेसि कोइ निभरोसी, कीन्हेसि कोई बरियार[१] ।
छारहिं तें सब कीन्हेसि, पुनि कीन्हेसि सब छार ॥

धनपति उहै जेहिक संसारू । सबै देइ निति, घट न भँडारू ॥
जावत जगत हस्ति औ चाँटा[२] । सब कहँ भुगुति राति दिन बाँटा ॥
ताकर दीठि जो सब उपराहीं[३] । मित्र सत्रु कोइ बिसरै नाहीं ॥
पंखि पतंग न बिसरे कोई । परगट गुपुत जहाँ लगि होई ॥
भोग भुगुति बहु भाँति उपाई[४] । सबै खवाइ, आप नहिं खाई ॥
ताकर उहै जो खाना पियना । सब कहँ देइ भुगुति औ जियना ॥
सबै आस-हर[५], ताकर आसा । वह न काहु के आस निरासा ॥

जुग जुग देत घटा नहिं उभै हाथ अस कीन्ह ।
और जो दीन्ह जगत महँ, सो सब ताकर दीन्ह ॥

आदि एक बरनौं सोइ राजा । आदि न अंत राज जेहि छाजा ॥
सदा सरबदा राज करेई । औ जेहि चहै राज तेहि देई ॥
छत्रहिं अछत[६] निछत्रहिं छावा । दूसरि नाहिं जो सरवरि[७] पावा ॥
परबत ढाह देख सब लोगू । चाँटहि करै हस्ति-सरि[८]-जोगू ॥
बज्रहिं तिनकहिं मारि उड़ाई । तिनहिं[९] बज्र करि देइ बड़ाई ॥

---

१. बलवान् । २. चींटी । ३. ऊपर है । ४. उत्पन्न किया । ५. निराश ।
६. रहते हुए । ७. बराबरी । ८. सदृश, तक । ९. तृण को ।

ताकर कीन्ह न जानै कोई । करै सोइ जो चित्त न होई ॥
काहू भोग भुगुति सुख सारा । काहू बहुत, भूख दुख मारा ॥

सबै नास्ति वह अहथिर,[१] ऐस साज जेहि केर ।
एक साजै औ भाँजै,[२] चहै सँवारै फेर ॥

अलख अरूप अवरन सो कर्ता । वह सब सों, सब ओहि सों बर्ता ॥
परगट गुपुत सो सरबबिआपी । धरमी चीन्ह, न चीन्है पापी ॥
ना ओहि पूत न पिता न माता । ना ओहि कुटुँब न कोइ सँग नाता ॥
जना न काहु, न कोइ ओहि जना । जहँ लगि सब ताकर सिरजना[३] ॥
वै सब कीन्ह जहाँ लगि कोई । वह नहिं कीन्ह काहु कर होई ॥
हुत[४] पहिले अरु अब है सोई । पुनि सो रहै रहै नहिं कोई ॥
और जो होइ सो बाउर[५] अंधा । दिन दुइ चारि मरै करि धंधा ॥

जो चाहा सो कीन्हेसि, करै जो चाहै कीन्ह ।
बरजनहार न कोई, सबै चाहि जिउ दीन्ह ॥

एहि बिधि चीन्हहु करहु गियानू । जस पुरान महँ लिखा बखानू ॥
जीउ नाहिं, पै जियै गुसाईं । कर नाहीं, पै करै सबाईं ॥
जीभ नाहिं, पै सब किछु बोला । तन नाहीं, सब ठाहर डोला ॥
स्रवन नाहिं, पै सब किछु सुना । हिया नाहिं, पै सब किछु गुना ॥
नयन नाहिं, पै सब किछु देखा । कौन भाँति अस जाइ बिसेखा[६] ॥
है नाहीं कोइ ताकर रूपा । ना ओहि सन कोइ आहि अनूपा ॥
ना ओहि ठाउँ, न ओहि बिनु ठाऊँ । रूप रेख बिनु निरमा नाऊँ ॥

ना वह मिला न बेहरा[७] ऐस रहा भरिपूरि ।
दीठिवंत कहँ नियरे, अंध मूरुखहिं दूरि ॥

---

१. स्थिर । २. भंजन या नाश करता है । ३. रचना । ४. था । ५. बावला ।
६. विशेष रूप से ज्ञात किया जाय । ७. अलग (बिहरना = फटना) ।

नागमती-वियोग-खंड

नागमती चितउर-पथ हेरा[१]। पिउ जो गए पुनि कीन्ह न फेरा ॥
नागर[२] काहु नारि वस परा। तेइ मोर पिउ मोसौं हरा ॥
सुआ काल होइ लेइगा पीऊ। पिउ नहिं जात, जात वरु जीऊ ॥
भएउ नरायन वावँन [३]करा। राज करत राजा वलि छरा ॥
करन[४] पास लीन्हेउ कै छंदू[५]। विप्ररूप धरि झिलमिल[६] इंदू ॥
मानत भोग गोपिचंद भोगी। लेइ अपसवा[७] जलंधर जोगी ॥
लेइगा कृस्नहि गरुड़ अलोपी। कठिन विछोह, जियहिं किमि गोपी? ॥

सारस जोरी कौन हरि, मारि वियाधा लीन्ह ?
झुरि झुरि पींजर[८] हौं भई, विरह काल मोहि दीन्ह ॥

पिउ-वियोग अस वाउर[९] जीऊ। पपिहा नित बोले 'पिउ पीऊ' ॥
अधिक काम दाधै सो रामा। हरि लेइ सुवा गयउ पिउ नामा ॥
विरह बान तस लाग न डोली। रकत पसीज, भींजि गइ चोली ॥
सूखा हिया, हार भा भारी। हरे हरे[१०] प्रान तजहिं सव नारी[११] ॥
खन एक आव पेट महँ साँसा। खनहिं जाइ जिउ, होइ निरासा ॥
पवन डोलावहिं, सींचहिं चोला[१२]। पहर एक समुझहिं मुख-बोला[१३] ॥
प्रान पयान होत को राखा? को सुनाव पीतम कै भाखा? ॥

आहि जो मारै विरह कै, आगि उठै तेहि लागि।
हंस[१४] जो रहा सरीर महँ, पाँख जरा गा भागि ॥

---

१. देखती है। २. नायक। ३. वामनरूप। ४. राजा कर्ण। ५. छलछन्द। ६. कवच। ७. चल दिया (अपसृत)। ८. पंजर, ठटरी। ९. वावला। १०. शनैःशनैः। ११. नाड़ी। १२. शरीर। १३. बोली समझने में एक पहर लगता है। १४. जीव और हंस।

पाट-महादेइ[१] ! हिये न हारू । समुझि जीउ, चित चेतु सँभारू ॥
भौंर कँवल सँग होइ मेरावा[२] । सँवरि नेह मालति पहँ आवा ॥
पपिहै स्वाती सौं जस प्रीती । टेकु[३] पियास, बाँधु मन थीती[४] ॥
धरतिहि जैस गगन सौं नेहा । पलटि आव बरषा ऋतु मेहा ॥
पुनि बसंत ऋतु आव नवेली । सो रस, सो मधुकर, सो बेली ॥
जिनि[५] अस जीव करसि तू बारी । यह तरवरि पुनि उठिहि सँवारी ॥
दिन दस बिनु जल सूखि बिधंसा । पुनि सोई सरवर सोइ हंसा ॥

मिलहिं जो बिछुरे साजन, अंकम भेंटि अहंत ।
तपनि मृगसिरा जे सहैं, ते अद्रा पलुहंत[६] ॥

---

१. पट्ट महादेवी । २. मिलाप । ३. सहो । ४. स्थिरता । ५. मत ।
६. पल्लवित होते हैं ।

तुलसीदास

(सत्रहवीं शती)

विनय-पत्रिका

(१)

ऐसी मूढ़ता या मन की ।

परिहरि[१] रामभगति सुरसरिता आस करत ओस कन की ॥
धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की ।
नहिं तहँ सीतलता न बारि, पुनि हानि होत लोचन की ॥
ज्यों गच-काँच[२] बिलोकि सेन[३] जड़ छाँह आपने तन की ।
टूटत अति आतुर अहार बस छति[४] बिसारि आनन की ॥
कहँ लौं कहौं कुचाल कृपानिधि जानत हौ गति जन की ।
तुलसिदास प्रभु हरहु दुसह दुख करहु लाज निज पन[५] की ॥

(२)

अब लौं नसानी अब न नसैहौं ।

राम-कृपा भव-निसा सिरानी जागे फिरि न डसैहौं[६] ॥
पायो नाम चारु चिन्तामनि उर-कर तें न खसैहौं[७] ।
स्याम-रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कंचनहिं कसैहौं ॥
परबस जानि हँस्यो इन इन्द्रिन निज बस ह्वै न हँसैहौं ।
मन मधुकर पन[८] करि तुलसी रघुपति-पद-कमल बसैहौं ॥

---

१. छोड़कर (परिहृत्य) । २. शीशे के फर्श में । ३. श्येन, बाज पक्षी । ४. क्षति । ५. अपनी प्रतिज्ञा (शरणागत वत्सलता, उद्धारकर्ता) की । ६. बिछावन न बिछाऊँगा । ७. न गिराऊँगा । ८. संकल्प या प्रण करके ।

(३)

केसव कहि न जाय का कहिये ।
देखत तव रचना विचित्र अति (हरि!) समुझि मनहिं मन रहिये ॥
सून्य[१] भीति पर चित्र, रंग नहि, तनु बिनु[२] लिखा चितेरे ।
धोये मिटइ न, मरइ भीति[३], दुख पाये यह तनु हेरे ॥
रविकर-निकर[४] वसै अति दारुन, मकर रूप तेहि माहीं ।
बदन-हीन सो ग्रसै चराचर, पान करन जे जाहीं ॥
कोउ कह[५] सत्य, झूठ कह[६] कोऊ, जुगल प्रबल[७] कोउ मानै ।
तुलसिदास परिहरै तीनि भ्रम[८], सो आपन[९] पहिचानै ॥

(४)

जाके प्रिय न राम-बैदेही ।
तजिए ताहि कोटि वैरी सम, जद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रहलाद, बिभीखन वन्धु, भरत महतारी ।
वलि गुरु[१०] तज्यो, कंत[११] ब्रज-बनितन्हि, भये मुदमंगलकारी ॥
नाते नेह राम के मनियत सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं[१२] ।
अंजन कहा[१३] आँखि जेहि फूटै, बहुतक कहौं कहाँ लौं ॥
तुलसी सो सब भाँति परम हित पूज्य प्रान ते प्यारो ।
जासों होय सनेह राम-पद एतो मतो हमारो ॥

---

१. माया की दीवार; आकाशरूपी दीवार । २. निराकार । ३. डर । ४. सूर्य किरणों का समुदाय (जल का भ्रम उत्पन्न करनेवाला), मृग-तृष्णा, (भ्रमात्मक संसार)। ५. कर्मवादी (पूर्व मीमांसक) संसार को सत्य कहते हैं। ६. अद्वैत वेदान्ती (उत्तरमीमांसक) इसे मिथ्या कहते हैं। ७. सांख्य योग-वाले दोनों (सत्यासत्य) मानते हैं। ८. (सत्य, असत्य, सत्यासत्य) तीनों भ्रमों को। ९. आत्मस्वरूप। १०. शुक्राचार्य। ११. पति। १२. तक। १३. क्या।

(५)

कबहुँक हौं[१] यहि रहनि[२] रहौंगो ।
श्री रघुनाथ-कृपालु-कृपा तें संत सुभाव गहौंगो ॥
जथा-लाभ[३] संतोष सदा, काहू सों कछु न चहौंगो ।
पर-हित-निरत निरन्तर, मन क्रम[४] बचन नेम निबहौंगो ॥
परुषबचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान, सम-सीतल मन, पर गुन, नहिं दोष कहौंगो ॥
परिहरि देह जनित चिंता, दुख-सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरि भगति लहौंगो[५] ॥

(६)

तू दयालु, दीन हौं, तू दानि, हौं भिखारी ।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुंज-हारी ॥
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ?
मो समान आरत नहिं, आरति-हर तोसो ॥
ब्रह्म तू, हौं जीव, तू है ठाकुर[६], हौं चेरो[७] ।
तात, मात, गुरु, सखा तू सब बिधि हितु[८] मेरो ॥
तोहिं मोहिं नाते[९] अनेक, मानियै जो भावै ।
ज्यों त्यों तुलसी कृपालु! चरन सरन पावै ॥

दोहावली

हिय निर्गुन, नयनन्हि सगुन, रसना राम सुनाम ।
मनहुँ पुरट[१०]-संपुट लसत, तुलसी ललित ललाम ॥ १ ॥
हम लखि, लखहि हमार, लखि हम हमार के बीच ।
तुलसी अलखहि का लखहि ? राम नाम जपु नीच ॥ २ ॥

---

१. कभी तो मैं । २. रीति, ढंग । ३. यथा-लाभ, लाभ के अनुसार ४. कर्म । ५. प्राप्त करूँगा । ६. स्वामी । ७. सेवक, दास, चेला । ८. हितू, भलाई चाहनेवाला । ९. सम्बन्ध । १०. सोना ।

तनु विचित्र, कायर वचन, अहि अहार, मन घोर ।
तुलसी हरि भए पच्छधर, ताते कह सब मोर ॥ ३ ॥

तुलसी रघुबर सेवकहिं खल डाँटत मन माखि[1] ।
बाजराज कै बालकहिं लवा दिखावत आँखि ॥ ४ ॥

भुव भुवंग तुलसी नकुल, डसत ज्ञान हरि लेत ।
चित्रकूट इक औषधी, चितवत होइ सचेत ॥ ५ ॥

दंड जतिन[2] कर, भेद जँह नरतक नृत्य समाज ।
जीतहु मनहिं सुनिय अस, रामचन्द्र के राज ॥ ६ ॥

केहि मग प्रविसति जाति केहि कहु दर्पन में छाँह ।
तुलसी त्यों जग-जीव-गति करी जीव के नाँह[3] ॥ ७ ॥

ग्रह गृहीत पुनि वात-वस, तेहि पुनि बीछी मार ।
ताहि पियाई वारुनी, कहहु कौन उपचार ॥ ८ ॥

बरसि परुष पाहन पयद पंख करौ टुक टूक ।
तुलसी परी न चाहिए चतुर चाकतहि चूक ॥ ९ ॥

मान राखिबो, माँगिबो, पिय सों नित नव नेहु ।
तुलसी तीनिउ तब फबैं, जौ चातक मत लेहु ॥ १० ॥

नहिं जांचत, नहिं संग्रही, सीस नाइ नहिं लेइ ।
ऐसे मानी माँगनेहि को बारिद बिन देई ॥ ११ ॥

चरग[4] चंगुगत चातकहि नेम प्रेम की पीर ।
तुलसी परबस हाड़ पर परिहै पुहुमी[5] नीर ॥ १२ ॥

बध्यो बधिक पर्यो पुन्य जल, उलटि उठाई चोंच ।
तुलसी चातक प्रेम-पट मरतहु लगी न खोंच[6] ॥ १३ ॥

---

१. क्रुद्ध होकर, सरोष । २. यती, संन्यासी । ३. नाथ । ४. चरख (शिकारी पक्षी) । ५. पृथिवी । ६. खरोंच, छिद्र ।

तुलसी मिटै न मरि मिटेहु साँचो सहज सनेह ।
मोरसिखा[१] बिनु मूरि[२] हू पलुहत[३] गरजत मेह ॥ १४ ॥
कै लघु कै बड़ मीत भल, सम सनेह दुख सोइ ।
तुलसी ज्यों घृत मधु सरिस मिले महाविष होइ ॥ १५ ॥
चरन चोंच लोचन रँगौ, चलौ मराली चाल ।
छीर-नीर-बिबरन समय बक उघरत तेहि काल ॥ १६ ॥
मिलै जो सरलहि सरल ह्वै, कुटिल न सहज बिहाइ ।
सो सहेतु, ज्यों बक्रगति व्याल न बिलै समाइ ॥ १७ ॥
लखि गयंद लै चलत भजि[४] स्वान सुखानों हाड़ ।
गज-गुन, मोल, अहार, बल महिमा जान कि राड़[५] ॥ १८ ॥
जोंक सूधि[६]-मन कुटिल गति, खल बिपरीत विचारु ।
अनहित सोनित[७] सोष सो, सो हित सोषनहारु ॥ १९ ॥
नीच गुडी ज्यों जानिवो, सुनि लखि तुलसीदास ।
ढीलि दिये गिरि परत महि, खैंचत चढ़त अकास ॥ २० ॥
अपनो ऐपन[८] निजहथा,[९] तिय पूजहिं निज भीति[१०] ।
फलै सकल मन कामना, तुलसी प्रीति प्रतीति[११] ॥ २१ ॥
सिष्य, सखा, सेवक, सचिव, सुतिय सिखावन साँच ।
सुनि समुझिय, पुनि परिहरिय पर-मन-रंजन पाँच ॥ २२ ॥
बरषत हरषत लोग सब, करषत लखै न कोइ ।
तुलसी प्रजा सुभाग ते भूप भानु सो होइ ॥ २३ ॥
मंत्री, गुरु अरु वैद जो प्रिय बोलहिं भय आस ।
राज, धरम, तन तीनि कर होइ बेगिही नास ॥ २४ ॥

---

१. एक (पर्वतीय) जड़ी । २. मूल, जड़ । ३. पनपती है, पल्लवित होती है। ४. भाग चलता है । ५. दुष्ट, जड़ । ६. सीधा । ७. अपकारक शोणित (विकृत खून)। ८. माङ्गलिक लेप (चावल और हल्दी पीसकर बनाया हुआ)। ९. अपने हाथ से (हाथ का छाप देकर)। १०. दीवाल । ११. विश्वास।

तुलसी पावस के समय धरी कोकिलन मौन ।
अब तौ दादुर बोलिहैं हमैं पूछिहै कौन ? ॥ २५ ॥

का भाषा का संसकृत, प्रेम चाहिये साँच ।
काम जु आवै कामरी,[१] का लै करै कुमाच[२] ॥ २६ ॥

कवितावली

कीर के कागर[३] ज्यौं नृपचीर विभूषन, उप्पम[४] अंगनि पाई ।
औध[५] तजी मगवास[६] के रूख[७] ज्यौं, पंथ के साथी ज्यौं लोग-लुगाई ॥
संग सुबंधु, पुनीत प्रिया मनो धर्मक्रिया धरि देह सुहाई ।
राजिव-लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ[८] की नाईं ॥ १ ॥

नाम[९] अजामिल ते खल कोटि अपार नदी भव बूड़त काढ़े ।
जे सुमिरे गिरि मेरु सिला-कन होत अजा-खुर बारिधि बाढ़े ॥
तुलसी जिहि के पद पंकज तें प्रगटी तटिनी जो हरै अघ गाढ़े[१०] ।
सो प्रभु स्वै-सरिता[११] तरिवे कहँ माँगत नाव करारे[१२] ह्वै ठाढ़े ॥ २ ॥

रावरे दोष न पावँन को, पगधूरि को भूरि प्रभाउ महा है ।
पाहन तें बन-बाहन[१३] काठको कोमल है, जल खाइ रहा है ॥
पावन पायँ पखारि[१४] कै नाव चढ़ाइहौं, आयसु[१५] होत कहा[१६] है ? ।
तुलसी सुनि केवट के बर-बैन हँसे प्रभु जानकी ओर हहा[१७] है ॥ ३ ॥

पुर तें निकसी रघुबीर-बधू, धरि धीर दये मग में डग द्वै ।
झलकीं भरि[१८] भाल कनी जल की, पुट सूखि गए मधुराधर वै[१९] ॥

---

१. कम्बल । २. अंडी, रेशमी वस्त्र । ३. पंख । ४. उपमा । ५. अवध । ६. रास्ते का निवास । ७. वृक्ष । ८. बटोही, पथिक । ९. राम नाम । १०. प्रगाढ़ । ११. अपनी गङ्गा । १२. किनारे । १३. जल-यान । १४. धोकर । १५. आज्ञा । १६. क्या । १७. ठठाकर । १८. सम्पूर्ण । १९. दोनों ।

फिर बूझति हैं "चलनो अब केतिक, पर्णकुटी करिहौ कित ह्वै[१]" ।
तिय की लखि आतुरता पिय की अँखियाँ अति चारु चलीं जल च्वै[२] ॥ ४ ॥
वनिता वनी[३] स्यामल गौर के बीच, बिलोकहु री सखी ! मोहिं सी ह्वै[४] ।
मग जोग न कोमल क्यों चलिहैं ? सकुचात मही पदपंकज छ्वै ॥
तुलसी सुनि ग्रामबधू बिथकीं[५] पुलकीं[६] तन औ चले लोचन च्वै ।
सब भाँति मनोहर मोहन रूप, अनूप हैं भूप के बालक द्वै ॥ ५ ॥
रानी मैं जानी[७] अजानी[८] महा, पवि पाहन हूँ ते कठोर हियो है ।
राजहु[९] काज-अकाज[१०] न जान्यो, कह्यो तिय को जिन कान कियो[११] है ॥
ऐसी मनोहर मूरति ये, बिछुरै कैसे प्रीतम लोग जियो है ?
आँखिन में, सखि ! राखिबे जोग, इन्हैं किमि कै[१२] बनवास दियो है ॥ ६ ॥
सीस जटा, उर बाहु बिसाल, बिलोचन लाल तिरीछी सी भौंहैं ।
तून[१३] सरासन बान धरे, तुलसी, बन-मारग में सुठि[१४] सोहैं ॥
सादर बारहिं बार सुभाय[१५] चितै तुम त्यों[१६] हमरो मन मोहैं ।
पूछति ग्राम बधू सिय सों "कहौ, साँवरे से, सखि रावरे को हैं" ? ॥ ७ ॥
सुनि सुंदर बैन सुधा रस साने, सयानी हैं जानकी जानी भली ।
तिरछे करि नैन दै सैन तिन्हैं समुझाइ कछू मुसकाइ चली ।
तुलसी तेहि औसर सोहैं सबै अवलोकति लोचन-लाहु[१७] अली ।
अनुराग-तड़ाग में भानु[१८] उदै बिगसीं मनो मंजुल कंज-कली[१९] ॥ ८ ॥

---

१. कहाँ पर । २. आँसू चू पड़े । ३. शोभित है । ४. मेरी तरह होकर (ध्यान से) । ५. स्तब्ध हो गयीं । ६. रोमांचित हो गयीं । ७. मैं समझती हूँ। ८. अज्ञानिनी । ९. राजा ने भी । १०. कार्याकार्य (भला बुरा) । ११. मान लिया है । १२. किस प्रकार । १३. तरकस । १४. सुष्ठु, सुन्दर । १५. पवित्र भाव से । १६. ओर । १७. लाभ । १८. (रामरूपी) सूर्य । १९. (स्त्रियों की आँखें) कमल की कलियाँ हैं ।

कैकेयी-मन्थरा-संवाद

(रामचरित-मानस)

अयोध्याकाण्ड

चौ०—दीख मंथरा नगरु बनावा। मंजुल मंगल बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू[1]। राम-तिलक सुनि भा उर-दाहू॥
करै बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवन बिधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव[2] तकै लेउँ केहि भाँती॥
भरत-मातु पहिं गइ बिलखानी[3]। का अनमनि हसि[4] कह हँसि रानी॥
उतरु देइ न, लेइ उसासू। नारि-चरित करि ढारइ आँसू॥
हँसि कह रानि गालु बड़[5] तोरें। दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें॥
तबहुँ न बोल चेरि बड़ि पापिनि। छाड़ै स्वास कारि[6] जिमि साँपिनि॥

दो०—सभय रानि कह कहेसि किन,[7] कुसल रामु महिपालु।
लखनु भरतु रिपुदमनु सुनि, भा कुबरी उर सालु[8]॥

चौ०—कत[9] सिख देइ हमहिं कोउ माई। गालु करब केहि कर बलु पाई॥
रामहिं छाड़ि कुसल केहि आजू। जेहि जनेसु[10] देइ जुबराजू॥
भयेउ कौसिलहिं बिधि अति दाहिन[11]। देखत गरब रहत उर नाहिन[12]॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मन छोभा[13]॥
पूत बिदेस न सोचु तुम्हारें। जानति हहु[14] बस नाहु[15] हमारें॥
नीद बहुत प्रिय सेज तुराई[16]। लखहु न भूप कपट चतुराई॥

---

१. उत्सव, उत्साह, आनन्द का अवसर। २. काम निकालने का मौका। ३. दुःखी चेहरा बनाकर। ४. अन्यमनस्का हो। ५. मुँहजोर। ६. काली। ७. कहती क्यों नहीं? ८. पीड़ा। ९. क्या। १०. जनेश, राजा। ११. अनुकूल। १२. नहीं। १३. क्षुब्ध हुआ। १४. हो। १५. नाथ, पति। १६. तोशक।

सुनि प्रिय वचन मलिन मनु जानी। झुकी[१] रानि अब रहु अरगानी[२] ॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढ़ावौं तोरी ॥
दो०—काने खोरे[३] कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि ॥
चौ०—प्रिय बादिनि सिख दीन्हिउँ तोही। सपनेहुँ तो पर कोप न मोही ॥
सुदिन सुमंगल-दायकु सोई। तोर कहा फुर[४] जेहि दिन होई ॥
जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। एहु दिनकर कुल रीति सुहाई ॥
राम तिलक जौ साँचेहु काली[५]। देउँ माँगु मन-भावत आली ॥
कौसल्या सम सब महतारी। रामहिं सहज सुभाय[६] पियारी ॥
मो पर करहिं सनेहु बिसेषी। मैं करि प्रीति परीछा देखी ॥
जौ बिधि जनम देइ करि छोहू[७]। होहु राम-सिय पूत-पतोहू ॥
प्रान ते अधिक रामु प्रिय मोरें। तिन्हकें तिलक छोभु कस तोरें ॥
दो०—भरत सपथ तोहिं, सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमउ करसि, कारन मोहि सुनाउ ॥
एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी ॥
फोरै जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रौरेहि[८] लागा ॥
कहहि झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहिं, करुइ[९] मैं माई ॥
हमहुँ कहब अब ठकुर-सोहाती[१०]। नाहिं त मौन रहब दिन राती ॥
करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा[११] सो लुनिअ[१२] लहिअ जो दीन्हा ॥
कोउ नृप होउ हमहिं का हानी। चेरि छाँड़ि अब होब कि रानी ॥
जारै जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
तातें कछुक बात अनुसारी[१३]। छमिअ देबि बड़ चूक हमारी ॥

---

१. क्रोध किया, टूट पड़ी। २. अलग करनेवाली, बीच डालनेवाली। ३. खोड, विकलाङ्ग, लँगड़ा। ४. सत्य, स्फुट। ५. कल ही। ६. स्वभावतः। ७. स्नेह, दया। ८. आपको। ९. कटु, कड़ुवी। १०. चाटुकारिता। ११. बोया; वपित। १२. काटिये। १३. चलायी।

दो०—गूढ़ कपट प्रिय वचन सुनि, तीय अधर-बुधि[1] रानि ।
सुर-माया वस बैरिनिहि, सुहृद जानि पतियानि[2] ॥
चौ०—सादर पुनि पुनि पूछति ओही । सबरी गान मृगी जनु मोही ॥
तसि मति फिरी अहै जस भावी । रहसी[3] चोरि घात[4] जनु फावी[5] ॥
तुम पूछहु मैं कहत डेराऊँ । धरेहु मोर घर-फोरी नाऊँ ॥
सजि प्रतीति[6] बहुविधि गढ़ि छोली[7] । अवध साढ़साती[8] तब बोली ॥
प्रिय सिय रामु कहा तुम रानी । रामहि तुम प्रिय सो फुरि बानी ॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते । समउ फिरे रिपु होंहि पिरीते[9] ॥
भानु कमल कुल पोषनिहारा । बिनु जर[10] जारि करै सोइ छारा[11] ॥
जरि तुम्हारी चह सवति उखारी । रूँधहु[12] करि उपाउ बर बारी[13] ॥
दो०—तुम्हहि न सोच सोहाग बल, निज बस जानहु राउ ।
मन मलीन मुँहमीठ नृप, राऊर[14] सरल सुभाउ ॥
चौ०—चतुर गँभीर राम महतारी । बीचु[15] पाइ निज बात सँवारी ॥
पठये भरतु भूप ननिऔरे । राम मातु मत[16] जानब रौरे ॥
सेवहि सकल सवति मोहि नीके[17] । गरबित भरत मातु बल पी के ॥
सालु[18] तुम्हार कौसलहिं माई । कपट चतुर नहिं होइ जनाई[19] ॥
राजहिं तुम पर प्रेमु बिसेखी । सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी ॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई । राम-तिलक हित लगन धराई ॥
यह कुल उचित राम कहुँ टीका । सबहिं सुहाइ मोहिं सुठि[20] नीका ॥
आगिलि बात समुझि डर मोही । देउ दैउ[21] फिरि सो फलु ओही ॥

---

१. हीन-बुद्धि । २. प्रतीति कर ली, विश्वास कर लिया । ३. हर्षित हुई । ४. दाँव, चाल । ५. ठीक बैठ गयी । ६. विश्वास जमाकर । ७. ठीक-ठाक कर । ८. शनैश्चरी-दशा (दुस्सह दशा) तीन अढ़ैया (२॥ वर्ष) की होती है । ९. प्यारे । १०. जल, जड़ । ११. क्षार, भस्म । १२. अवरुद्ध कर दो । १३. घेरा या बाड़ा लगाकर । १४. आप का । १५. अवकाश, मौका । १६. सलाह । १७. अच्छी तरह से । १८. दुःख । १९. प्रकट । २०. सुष्ठु, सुन्दर रीति से । २१. दैव ।

दो०–रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु[१] ।
कहिसि कथा सतु[२] सवति कै, जेहि विधि बाढ़[३] बिरोधु ॥

चौ०–भावी बस प्रतीति उर आई। पूछ रानि पुनि सपथ देवाई।
का पूछहु तुम अबहु न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना ॥
भयेउ पाषु[४] दिन सजत समाजू। तुम्ह पाइ सुधि मोहि सन[५] आजू ॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारे। सत्य कहे नहि दोषु हमारे ॥
जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ विधि देइहि हमहि सजाई ॥
रामहि तिलक कालि जौं भयेऊ। तुम्ह कहँ बिपति बीज विधि बयऊ[६] ॥
रेख खँचाइ कहौं बल भाखी। भामिनि भयेहु दूध कइ माखी[७] ॥

दो०–कद्रू[८] बिनतहिं[९] दीन्ह दुख, तुम्हहि कौसला देव[१०] ।
भरतु बन्दिगृह सेइहहिं, लखन राम के नेव[११] ॥

चौ०–कैकय-सुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि[१२] सुखानी ॥
तन पसेउ[१३] कदली जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तव चाँपी ॥
कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरज धरहु प्रबोधिसि रानी ॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि[१४] सराहइ मानि मराली ॥
सुनु मंथरा बात फुर तोरी। दहिनि आँखि नित फरकइ मोरी ॥
दिन प्रति देखौं राति कुसपने। कहउ न तोहि मोह वस अपने ॥
काह कहौं सखि सूध[१५] सुभाऊ। दाहिन वाम न जानहुं काऊ ॥

दो०–अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहुक कीन्ह ।
केहि अघ एकहि बार मोहि, दैअँ[१६] दुसह दुखु दीन्ह ॥

चौ०–नैहर जनमु भरब[१७] बरु[१८] जाई। जियत न करवि सवति सेवकाई ॥
अरि बस दैउ जियावत जाही। मरन नीक तेहि जीवन चाही ॥

---

१. ज्ञान। २. शत, सौ। ३. बढ़े। ४. एक पक्ष। ५. से। ६. बो दिया। ७. दूध की मक्खी। ८. नाग-माता। ९. गरुड-माता। १०. देगी। ११. नायब, सहायक। १२. डरकर। १३. पसीना (प्रस्वेद) आ गया। १४. बगुली को। १५. सीधा। १६. दैव। १७. जीवन बिता दूँगी। १८. बल्कि।

दीन वचन कह बहुविधि रानी। सुनि कुबरी तिय माया ठानी ॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना[१]। सुख सुहाग तुम्ह कहुँ दिन दूना ॥
जेहि राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि एहु फल परिपाका[२] ॥
जब ते कुमति सुना मैं स्वामिनि। भूख न वासर नींद न जामिनि[३] ॥
पूछेउ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल[४] होहिं यह साँची ॥
भामिनि करहु त कहौं उपाऊ। है तुम्हरी सेवा बस राऊ ॥

दो०—परउँ कूप तुअ[५] वचन पर, सकौं पूत पति त्यागि।
कहसि मोर दुखु देखि बड़, कस न करब हित लागि[६] ॥

चौ०—कुबरी करि कबुली[७] कैकेई। कपट छुरी उर पाहन टेई[८] ॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसे। चरइ हरित तिन[९] बलिपसु जैसे ॥
सुनत बात मृदु अंत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर[१०] घोरी ॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाहीं। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाहीं[११] ॥
दुइ वरदान भूप सन[१२] थाती। माँगहु आजु जुड़ावहु[१३] छाती ॥
सुतहिं राजु रामहिं बनवासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू[१४] ॥
भूपति राम सपथ जब करई। तब माँगहु जेहि बचन न टरई ॥
होइ अकाजु आजु निसि बीते। बचन मोर प्रिय मानहु जी ते[१५] ॥

दो०—बड़ कुघातु करि पातकिनि, कहेसि कोपगृह जाहु।
काज सँवारेहु सजग सबु, सहसा जनि पतिआहु ॥

चौ०—कुबरिहि रानि प्रान प्रिय जानी। बार बार बड़ि बुद्धि बखानी ॥
तोहि सम हितु न मोर संसारा। बहे जात कइ[१६] भइसि अधारा ॥
जौं बिधि पुरब[१७] मनोरथ काली। करौं तोहि चख पूतरि[१८] आली ॥

---

१. छोटा। २. परिपक्व, परिपाक (परिणाम या अन्त)। ३. यामिनी, रात्रि। ४. भूपाल। ५. तव, तेरे। ६. भलाई के लिए। ७. स्वीकार (कबूल कराकर। ८. घिसकर सान दिया। ९. तृण। १०. विष। ११. मुझसे। १२. से, के पास। १३. ठंडी करो। १४. उल्लास। १५. हृदय से। १६. बहते हुए के लिए। १७. पूर्ण करे। १८. आँख की पुतली।

बहु विधि चेरिहिं आदरु देई। कोप भवन गवनी[१] कैकेई ॥
बिपति बीज बरषा रितु चेरी। भुँइ[२] भइ कुमति कैकई केरी ॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा[३]। बर दोउ दल[४] दुख फल परिनामा[५] ॥
कोप समाजु[६] साजि सबु सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई[७] ॥
राउर[८] नगर कोलाहलु होई। यह कुचालि कछु जान न कोई ॥
दो०—प्रमुदित पुर नर नारि सब, सजहि सुमंगल चार।
एक प्रविसहिं एक निर्गमहिं, भीर भूप दरबार ॥

———

१. गयी। २. भूमि। ३. उत्पन्न हुआ, जन्मा। ४. (अँकुरते समय के) दो पत्ते। ५. अन्त। ६. कोप व्यक्त करने के साज-समाज (राजाओं के यहाँ)। ७. बिगाड़ दिया। ८. राज-कुल (अन्तःपुर)।

मीराँबाई

(सोलहवीं-सत्रहवीं शती)

पद

(१)

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई ।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई[1] ॥
भाई छोड़्या बन्धु छोड़्या छोड़्या सगा सोई ।
साध संग बैठ बैठ लोक लाज खोई ॥
भगत देख राजी हुई जगत देख रोई ।
अँसुवन जल सींच सींच प्रेम बेल बोई ॥
दधि मथ घृत काढ़ि लयो डार दई छोई[2] ।
राणा विष-प्यालो भेज्यो पीय मगन होई ॥
अब तो बात फैल पड़ी जाणै सब कोई ।
'मीराँ' राम-लगण लागी होणी[3] होय सो होई ॥ १ ॥

(२)

बसो मेरे नैनन में नंदलाल ।
मोहनी मूरत साँवरि सूरत नैना बने बिसाल ।
अधर सुधा-रस मुरली राजित उर बैजन्ती माल ॥
छुद्र-घंटिका[4] कटि तट सोभित नूपुर सब्द रसाल[5] ।
'मीराँ' प्रभु संतन सुखदाई भगत-बछल[6] गोपाल ॥ २ ॥

(३)

पायो जी, मैंने नाम रतन धन पायो ।
बस्तु अमोल दीन्ह मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो ॥

---

१. ढूँढ़ा । २. निस्सार-वस्तु (मट्ठा), सीठी । ३. भवितव्यता ।
४. करधनी । ५. मधुर । ६. भक्तवत्सल ।

जनम जनम की पूँजी पाई, जग में सभी खोवायो ।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवे, दिन दिन वढ़त सवायो ॥
सत की नाव खेवटिया[1] सतगुरु, भवसागर तर आयो ।
'मीराँ' के प्रभु गिरधर नागर, हरख हरख जस गायो ॥

(४)

श्री गिरधर आगे नाचूँगी ।
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊँ, प्रेमी जनकूँ जाचूँगी[2] ।
प्रेम प्रीति की बाँधि घूँघरू, सुरत[3] की कछनी[4] काछूँगी ॥
लोक लाज कुल की मरजादा, यामें एक न राखूँगी ॥
पिव के पलँगा जा पौढूँगी, 'मीराँ' हरि-रँग राँचूँगी[5] ॥ ४ ॥

(५)

लागी मोहे राम खुमारी[6] हो ।
रमझम वरसे मेहड़ा[7] भीजै तन सारी हो ॥
चहुँदिस चमकै दामणी[8] गरजै घन भारी हो ।
सतगुर भेद वताइया खोली भरम किवारी हो ॥
सब घट दीसै आतमा सबही सूँ न्यारी हो ।
दीपका जोउँ[9] ग्यान का चढ़ूँ अगम अटारी हो ॥
'मीराँ' दासी राम की इमरत[10] वलिहारी हो ॥ ५ ॥

---

१. केवट । २. प्रार्थना करूँगी । ३. सुरत—वैष्णव परम्परा में 'स्मरण' । कुछ इसे 'स्वरत' (अपने में लीन, आत्मलीन) का अपभ्रंश मानते हैं; कुछ फारसी के 'सूरत इस्लामिया' का रूप बताते हैं । वस्तुतः प्रेष्ठ या उपास्य के प्रति अत्यन्तानुराग को व्यक्त करने के लिए साधकों ने इसका प्रयोग किया है । सिद्धों और सन्तों (निर्गुण-सगुण) ने अपनी अपनी परम्परा के अनुसार अर्थ ग्रहण किया है । ४. घुटने तक रहने वाला (राजस्थानी) घांघरा । ५. रँग जाऊँगी । ६. नशा । ७. (प्रेम) मेघ-रूप । ८. बिजली, दामिनी (ज्ञान की) । ९. जलाऊँ । १०. भक्ति रूप अमृत [योगियों की आत्मानुभूति या समरसता] की चर्चा रहस्यमयी होकर मीरा ने कबीर की तरह की है ।

(६)

नहिं ऐसो जन्म बारम्बार ।
क्या जाणूँ कछु पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार ॥
वढ़त[१] पलपल घटत[२] छिन छिन चलत[३] न लागे बार[४] ।
विरछ के ज्यों पात टूटें लागै नहि पुनि डार ॥
भौ-सागर अति जोर कहिये विषय ओखी[५] धार ।
सुरत का नर बाँध बेड़ा वेगि[६] उतरै पार ॥
साधु संता ते महंता, चलत करत पुकार ।
दासि 'मीराँ' लाल गिरधर जीवना दिन चार ॥

(७)

मन रे परस[७] हरि के चरन ।
सुभग सीतल कमल-कोमल, त्रिविध ज्वाला[८] हरन ॥
जे चरन प्रहलाद परसे, इन्द्र पदवी धरन ।
जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हों, राखि अपने सरन ॥
जिन चरन ब्रह्मांड भेट्यो,[९] नख सिखौ श्री-भरन[१०] ।
जिन चरन प्रभु परसि लीन्हें, तरी गौतम घरन[११] ॥
चिन चरन कालीहिं[१२] नाथ्यो, गोप-लीला-करन ।
जिन चरन धार्‍यो गोवर्धन, गरव मघवा[१३] हरन ॥
दासि 'मीराँ' लाल गिरधर, अगम-तारन-तरन[१४] ॥ ७ ॥

---

१. जीवन बढ़ता है। २. आयु घटती है। ३. नष्ट होते। ४. विलम्ब, दिन। ५. तीक्ष्ण। ६. शीघ्र। ७. स्पर्श करो। ८. देहिक-दैविक-भौतिक ताप। ९. भेंट लिया, पहुँच गये। १०. नख-शिख-सौन्दर्यपूर्ण। ११. गृहिणी। १२. नाग (कालिय)। १३. इन्द्र। १४. अगम्य (भवसागर) को पार कराने वाले बेड़ा।

रहीम

(सत्रहवीं शती)

दोहा

अमर-वेलि[१] बिनु मूलकै, प्रतिपालत जो ताहि ।
'रहिमन' ऐसे प्रभुहिं तजि, खोजत फिरिये काहि ॥ १ ॥
तनु 'रहीम' है कर्म-वस, मनु राखौ उहि[२] ओर ।
जल में उलटी[३] नाव ज्यों, खैंचत गुन[४] के जोर ॥ २ ॥
खैंचि चढ़नि ढीली ढरनि, कहहु कौन यह प्रीति ।
आज काल्हि मोहन गही, वंस-दिया[५] कै रीति ॥ ३ ॥
'रहिमन' गठरी धूरि[६] कै, रही पवन ते पूरि[७] ।
गाँठि युक्ति[८] कै खुलि गयी, अन्त धूरि कै धूरि ॥ ४ ॥
रहिमन अपने गोत कहँ, सबै चहत उतसाह ।
मृग उछरत[९] आकास कहँ, भूमि खनत[१०] वाराह ॥ ५ ॥
रहिमन पानी राखिये, बिनु पानी सब सून ।
पानी गये न ऊबरै,[११] मोती मानुस चून ॥ ६ ॥
रहिमन प्रीति सराहिये, मिले होत रँग दून ।
ज्यों जरदी[१२] हरदी तजै, तजै सपेदी[१३] चून ॥ ७ ॥
जलहिं मिलाइ रहीम ज्यों, कियो आप सम छीर ।
अँगवहि[१४] आपुहि आपु लखि, सकल आँच कै भीर ॥ ८ ॥

---

१. आकाश लता (पीले रंग की बिना जड़ की बल्लरी) ; २. परमात्मा की ओर । ३. जल-प्रवाह के प्रतिकूल । ४. रस्सी । ५. आकाश दीप । ६. मिट्टी, धूल । ७. पूर्ण (मानव शरीर हवा धूल की गाँठ (योग) 'बवंडर' के समान है) ८. मेल, योग । ९. मृग-छाञ्छन (चन्द्रमा) के रथ में हिरण जुते हुए हैं, इस लिए उछलता है । १०. खोदता है । पानी = मान-प्रतिष्ठा, जल, आब, कान्ति । ११. नहीं अच्छा लगता । १२. पीलापन । १३. सफेदी (दोनों के मिलने से लाल रंग होता है) । १४. सहता है । आपु = स्वतः, जल ।

मन्दन के मारेहु गये, औगुन गुन न सिराहिं[1] ।
ज्यों 'रहीम' बाधहु[2] बधे, सुरहा[3] हुइ अधिकाहिं[4] ॥ ९ ॥
रहिमन पेटे सों कहत, क्यों न भये तुम पीठि ।
भूखे मान बिगारहू, भरे बिगारहु डीठि[5] ॥ १० ॥
जो 'रहीम' दीपक दसा, तिय राखति पट ओट[6] ।
समय परे ते होत है, वाही पट की चोट[7] ॥ ११ ॥
रहिमन सीधी चाल सों, प्यादा[8] होत वज़ीर ।
फरज़ी[9] साह[10] न हुइ सकै, गति टेढ़ी तासीर[11] ॥ १२ ॥
जो 'रहीम' ओछो बढ़ै, तौ अति ही इतराय ।
प्यादे सों फ़रज़ी भयो, टेढ़ो टेढ़ो जाय ॥ १३ ॥
एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाइ ।
रहिमन सींचै मूल कौं, फूलइ फलइ अघाइ ॥ १४ ॥
दीरघ दोहा अर्थ के, आखर[12] थोरे आहिं ।
ज्यों रहीम नट-कुंडली,[13] सिमिटि कूदि कढ़ि जाहिं ॥ १५ ॥
रूप[14] कथानक[15] चारुपद[16], किंचन[17] दोहा लाल ।
ज्यों ज्यों निरखत अलुप[18] त्यों, मोल[19] रहीम बिसाल ॥ १६ ॥

---

१. बन पड़ते हैं। २. मूँज की रस्सी। ३. ऐठनदार होकर। ४. बढ़ जाते हैं। ५. दृष्टि। ६. आड़। ७. स्त्रियां दीपक को आँचल से बुझाती हैं। ८. पैदल। ९. वज़ीर। १०. बादशाह (शतरंज के मुहरे)। ११. आदत, असर से। १२. अक्षर। १३. लकड़ी का छोटा घेरा। 14. शब्द योजनादि। १५. कथा-प्रसङ्ग। १६. सुन्दर पद, सुन्दर पहल। १७. छोटा। १८. छिपा हुआ। १९. वैशिष्ट्य।

केशवदास

(सत्रहवीं शती)

[राम चन्द्रिका-बालकाण्ड]

गणेश-वन्दना

मनहरण छन्द

बालक मृणालनि[1] ज्यों तोरि डालै सब काल,
कठिन कराल त्यों अकाल दीह[2] दुख को।
विपति हरत हठि[3] पद्मिनी के पात सम,
पंक ज्यों पताल पेलि पठवै कलुख[4] को।
दूरि कै कलंक-अंक[5] भव-सीस-ससि-सम[6],
राखत है केशोदास दास के बपुख[7] को।
साँकरे[8] की साँकरन[9] सनमुख होत तोरै,
दसमुख[10] मुख जोवैं[11] गजमुख मुख को॥ १॥

सरस्वती-वन्दना

बानी[12] जगरानी की उदारता बखानी जाय,
ऐसी मति कहौ धौं[13] उदार कौन की भई।
देवता, प्रसिद्ध सिद्ध, ऋषिराज तपवृद्ध,
कहि कहि हारे सब, कहि न कहूँ[14] लई।

---

१. कमल नाल को। २. दीर्घ। ३. हठकर अपने भक्तों के दुःख दूर करते हैं। ४. कलुष, पाप। ५. चिह्न। ६. शिव जी के मस्तक पर स्थित निष्कलङ्क चन्द्र की तरह दोष रहित कर। ७. शरीर। ८. संकट। ९. शृङ्खला। १०. (ब्रह्मा ४ मुख, विष्णु १ मुख, शिव ५ मुख)। ११. देखते हैं। १२. सरस्वती। १३. भला, तो। १४. किसी ने भी।

भावी, भूत, वर्त्तमान जगत बखानत है,
केशोदास केहूँ न बखानी[1] काहू पै गई।
बर्णै पति[2] चार मुख, पूत[3] बर्णै पाँच मुख,
नाती[4] बर्णै षट मुख, तदपि नई नई॥ २॥

श्री राम-वन्दना

पूरण[5] पुराण अरु पुरुष पुराण[6] परि-
पूरण बतावैं न बतावैं और उक्ति को।
दरसन देत[7], जिन्हें दरसनसमुझैं न[8],
'नेति नेति' कहै वेद छाँड़ि आन युक्ति को।
जानि यह केशोदास अनुदिन राम राम,
रटत रहत न डरत पुनरुक्ति[9] को।
रूप देहि अणिमाहि, गुणदेहि गरिमाहि,
भक्ति देहि महिमाहि, नाम देहि[10] मुक्ति को॥ ३॥

---

१. वर्णित। २. ब्रह्मा। ३. शिव। ४. षडानन (कार्त्तिकेय)। ५. समस्त। ६. प्राचीन। ७. भक्तों को दर्शन देते हैं। ८. (षड्) दर्शन भी जिन्हें नहीं समझ पाते। ९. एक से अधिक बार एक ही बात को कहना पुनरुक्ति (काव्य-दोष) है। १०. (रूप, गुण, भक्ति और नाम की 'याचना' भी 'देहि' पद के प्रयोग से समझी जा सकती है)।

अवधपुरी-वर्णन

मधुमार छन्द

ऊँचे अवास[१]। बहु ध्वज प्रकास ।
सोभा बिलास। सोभै अकास ।

आभीर छन्द

अति सुन्दर अति साधु[२]। थिर[३] न रहत पल आधु ।
परम तपोमय मानि। दंड-धारिणी[४] जानि ॥

हरिगीत छन्द

शुभ-द्रोण-गिरिगण-शिखर ऊपर उदित ओषधि सी गनौ ।
बहु वायु-वश वारिद वहोरहिं[५] अरुझ[६] दामिनि द्युति मनौ ॥
अति किधौं रुचिर प्रताप पावक प्रगट सुरपुर को चली ।
यह किधौं सरित सुदेश मेरी करी[७] दिवि[८] खेलति भली ॥

दोहा

जीति जीति कीरति लई, शत्रुन की बहु भाँति ।
पुर पर बाँधी सोभिजै[९], मानो तिनकी पाँति ॥

त्रिभङ्गी छन्द

सम सब घर सोभैं, मुनि मन लोभैं, रिपु गण छोभैं, देखि सबै ।
बहु दुंदुभि बाजैं, जनु घन गाजैं, दिग्गज लाजैं, सुनत जबै ।
जहँ तहँ श्रुति पढ़हीं, बिघन न बढ़हीं, जय यश मढ़हीं, सकल दिशा ।
सबई सब विधि छम[१०] बसत यथा क्रम देव पुरी सम दिवस निशा ॥

---

१. गृह। २. सीधी (पताकाएँ), सज्जन। ३. अचल। ४. (दण्ड=पताकाओं के बाँस) दण्ड धारण करने वाली। ५. लौटाती हैं। ६. उलझी। ७. मेरी बनायी। ८. आकाश। ९. शोभा देती है। १०. क्षम, योग्य।

दंडकला छन्द

कवि[1] कुल, विद्याधर[2], सकल कलाधर[3] राजराज[4] वर वेष बने ।
गणपति[5] सुखदायक[6], पशुपति[7] लायक, सूर[8] सहायक कौन गने ।
सेना-पति[9], बुधजन[10], मंगल[11] गुरुगण[12] धर्मराज[13] मन बुद्धि धनी ।
बहु शुभ मनसाकर[14] करुणामय अरु सुर-तरंगिनी[15] सोभ-सनी ॥

हीरक-छन्द

पंडित गण मंडित गुण दंडित-मति[16] देखिये ।
क्षत्रियवर धर्म प्रवर[17] क्रुद्ध समर लेखिये ॥
वैश्य सहित-सत्य रहित-पाप, प्रगट मानिये ।
शूद्र सकति[18] विप्र भगति जीव[19] जगत[20] जानिये ॥

सिंहविलोकित छन्द

अति मुनि तन मन तँह मोहि रह्यो ।
कछु बुधि बल वचन न जाय कह्यो ॥
पशु पक्षि नारि नर निरखि तबै ।
दिन रामचन्द्र गुण गनत सबै ॥

---

१. कविगण, शुक्र । २. देवविशेष, विद्वान् । ३. कला के ज्ञाता, चन्द्रमा । ४. श्रेष्ठ क्षत्रिय, कुबेर । ५. समूह का प्रधान (अधिकारी), गणेश । ६. इन्द्र, सुख देने वाले । ७. पशुशालाओं के अधिकारी, महादेव । ८. योद्धा, सूर्य । ९. नायक, कार्तिकेय । १०. बुध, बुद्धिमान । ११. मङ्गलपाठ करने वाले, मंगल ग्रह । १२. शिक्षक, वृहस्पति । १३. न्यायकर्ता, यम । १४. मनोनुकूल फलद, कल्पतरु, कामधेनु । १५. सरयू नदी, आकाशगङ्गा । १६. शासित बुद्धि । १७. प्रबल । १८. शाक्त । १९. हृदय । २०. जगती है ।

मरहट्टा-छन्द

अति उच्च अगारनि[1] बनी पगारनि[2] जनु चिंतामणि नारि[3] ।
बहु शत मख धूमनि धूपति अंगनि[4] हरि की सी अनुहारि[5] ॥
चित्री बहु चित्रनि परम विचित्रन केशवदास निहारि ।
जनु विश्वरूप[6] को अमल आरसी रची बिरंचि बिचारि ॥

सोरठा

जग यशवंत विशाल, राजा दशरथ की पुरी ।
चन्द्र[7] सहित सब काल, भालथली[8] जनु ईश की ॥

कुंडलिया

पंडित अति सिगरी[9] पुरी, मनहु गिरा[10] गति-गूढ़[11] ।
सिंहन[12] युत (सिंह चढ़ी) जनु चंडिका मोहति मूढ़ अमूढ़ ॥
मोहति मूढ़ अमूढ़ देवसँग दिति[13] सी सोहै ।
सब श्रृंगार सदेह मनो रति मन्मथ मोहै ॥
सबै सिंगार सदेह सकल सुख सुखमा मंडित ।
मनो शची विधि रची विविध विधि बरणत पंडित ॥

काव्य-छंद

मूलन[14] ही को तहाँ अधोगति केशव गाइय ।
होम-हुताशन-धूम[15] नगर एकै मलिनाइय ॥

---

१. घर । २. घेरा । ३. समूह । ४. आँगन । ५. सादृश्य । ६. संसार ७. रामचन्द्र, चन्द्रमा । ८. मस्तक । ९. सम्पूर्ण । १०. सरस्वती । ११. रूप को छिपाये । १२. क्षत्रिय से युक्त, सिंहारूढ़ । १३. अदिति । १४. जड़ें (मूलानामधोगतिः......"कादम्बरी") । १५. (यत्र च हविर्धूमेषु मलिनता) धुँआ ।

दुर्गम दुर्गनि ही जु कुटिल गति सरितन ही में ।
श्रीफल[१] को अभिलाष प्रगट कपि(वि ?) कुल के जी में ॥

दोहा

अति चंचल जहँ चलदलै[२] विधवा[३] वनी[४] न नारि ।
मन मोह्यौ ऋषिराज[५] को, अद्भुत नगर निहारि ॥

सोरठा

नागर नगर अपार, महा मोहतम मित्र[६] से ।
तृष्णा लता कुठार, लोभ समुद्र अगस्त्य से ॥

---

१. वेल का फल (कपीनां श्रीफलाभिलाषः 'काद०')। द्रष्टव्य—परिसंख्यालङ्कार-प्रधान इस वर्णन में 'कादम्बरी' (जाबाल्याश्रम वर्णन) की छाया' है। २. पीपल, चंचल। ३. धव नामक वृक्ष से रहित, राँड़। ४. वाटिका। ५. विश्वामित्र। ६. सूर्य।

रसखान

(सत्रहवीं शती)

मानुस हौं[१] तो वही रसखानि बसौं ब्रज गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पसु हौं तो कहा बसु[२] मेरो चरौं नित नंद की धेनु मँझारन[३] ।
पाहन हौं तो वही गिरिकौ जो धरयो कर छत्र पुरंदर कारन ।
जो खग हौं तो बसेरो करौं मिलि कालिंदी कूल कदंब की डारन ॥१॥

या[४] लकुटी अरु कामरिया पर[५] राज तिहूँ पुर को तजि डारौं ।
आठहुँ सिद्धि नवौ निधि को सुख नंद की गाय चराइ बिसारौं ।
इन आँखिन सों रसखान कबौं ब्रज के वन बाग तड़ाग निहारौं ।
कोटिकहूँ कलधौत[६] के धाम करील के कुंजन ऊपर वारौं[७] ॥२॥

सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहिं निरंतर गावैं ।
जाहि अनादि अनंत अखंड अछेद अभेद सुबेद बतावैं ।
नारद से सुकव्यास रटैं पचि हारे[८] तऊ पुनि पार न पावैं ।
ताहि अहीर की छोहरियाँ[९] छछियाँ[१०] भरि छाछ[११] पै नाच नचावैं ॥३॥

ब्रह्म मैं ढूँढ्यो पुरानन-गानन वेद रिचा सुनि चौगुने चायन[१२] ।
देख्यो सुन्यो कबहूँ न कहूँ वह कैसे सरूप औ कैसे सुभायन ।
टेरत[१३] हेरत हारि परयो रसखानि बतायो न लोग लुगायन[१४] ।
देख्यो दुरो[१५] वह कुंज कुटीर में बैठो पलोटतु[१६] राधिका-पायन ॥४॥

कानन दै अँगुरी रहिबो जबहीं मुरली धुनि मंद बजैहै ।
मोहिनी तानन सों रसखानि अटा[१७] चढ़ि गोधन गैहै तो गैहै[१८] ।
टेरि कहौं सिगरे ब्रज लोगनि काल्हि कोऊ कितनो समुझैहै ।
माई री, वा मुख की मुसकानि, सँभारि न जैहै, न जैहै, न जैहै ॥५॥

---

१. होऊँ । २. वश, अधिकार । ३. बीच में । ४. इस । ५. (गोचारण के वेष) लाठी, कंबल पर । ६. सोना । ७. न्योछावर कर दूँ । ८. श्रम कर थक गये । ९. बालाएँ । १०. मट्ठा नापने का बर्तन । ११. मट्ठा । १२. चाव से । १३. आह्वान करते । १४. स्त्रियों ने । १५. छिपे हुए । १६. सहला रहे हैं । १७. अटारी । १८. गावें तो गावें ।

सेनापति

(सत्रहवीं शती)

ग्रीष्म

वृख को तरनि[1] तेज सहसौ किरनि तपै,
ज्वालनि के जाल विकराल वरखत हैं।
तचति[2] धरनि, जग झुरत झरनि,[3] सीरी[4]
छाँह को पकरि, पंथी-पंछी बिरमत हैं॥
"सेनापति" नेक दुपहरी ढरकत होत,
घमका[5] विखम, जो न पात खरकत हैं।
मेरे जान पौन सीरी ठौर को पकरि कौनौ
घरी घरी वैठि कहूँ घाम वितवत हैं॥१॥

वर्षा

'सेनापति' उनए[6] नए जलद सावन के
चारिहू दिसनि घूमरत[7] भरि तोइ[8] कै।
सोभा सरसाने[9], न वखाने जात केहूँ भाँति
आने हैं पहार मानो काजर के ढोइकै॥
वन सों गगन छयो[10], तिमिर सघन भयो,
देखि न परत मानो रवि गयो खोइकै।
चारि मास[11] भरि स्यांम निसा को भरम मानि,
मेरी जान, याही तें रहत हरि सोइकै॥२॥

---

१. वृष राशि का सूर्य। २. तपती है। ३. अग्नि। ४. ठंडी। ५. ऊमस। ६. उमड़ कर आये। ७. घुमड़ते हैं। ८. तोय (जल)। ९. फैला रहे हैं। १०. छा गया है। ११. चातुर्मास्य (हरिशयनी से देवोत्थान तक)।

शरद्

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति[1] 'सेना-
पति' है सुहाति, सुखी जीवन के गन हैं।
फूले हैं कुमुद फूली मालती सघन बन,
फूलि रहे तारे मानो मोती अनगन हैं॥
उदित विमल चंद, चाँदनी छिटकि रही
राम को सो जस[2] अध ऊरध[3] गगन है।
तिमिर हरन भयो, सेत है बरन सब
मानहु जगत छीर-सागर-मगन है॥ ३॥

हेमन्त

सीत को प्रबल 'सेनापति' कोपि चढ़्यो दल
निबल अनल दूरि गयो सियराइकै[4]।
हिम के समीर तेई बरखैं बिखम तीर,
रहहि है गरम भौन कोननि में जाइकै॥
धूम नैन बहैं, लोग होत हैं अचेत तऊ,
हिय सों लगाइ रहे नेक सुलगाइकै।
मानो मीत (भीत) जानि महासीत सों पसारि पानि
छतियाँ की छाँह राख्यो पावक छपाइकै॥ ४॥

शिशिर

सिसिर में ससिको सरूप पावै सविताहू
घामहूँ में चाँदनी की दुति दमकति है।
'सेनापति' होत सीतलता है सहसगुनी
रजनी की झाँई[5] बासर में झमकति[6] है॥

---

१ शीतल होती है। २. यश। ३. नीचे-ऊपर (अधः, ऊर्ध्व)। ४. ठंडा होकर। ५. छाया। ६. झलकती है।

चाहत चकोर सूर ओर दृग छोर करि
चकवा की छाती तजि धीर धसकति[१] है ।
चंद के भरम होत मोद है कुमोदिनी को
ससि संक[२] पंकजनी[३] फूलि न सकति है ॥ ५ ॥

बसन्त

लाल लाल टेसू फूलि रहे हैं बिलास-संग[४]
स्याम रंगमयी मानो मसि में मिलाये हैं ।
तहाँ मधुकाज[५] आइ बैठे मधुकर पुंज
मलय पवन उपबन बन धाये हैं ॥
'सेनापति' माधव[६] महीना में पलास तरु
देखि देखि भाव कविता के मन आये हैं ।
आधे अंग सुलगि सुलगि रहे आधे मानो
बिरही दहन काम क्वैला[७] परचाए[८] हैं ॥ ६ ॥

---

१. दहलती है । २. सन्देह । ३. कमलिनी । ४. शोभा के साथ । ५. मधु के लिए । ६. चैत्र । ७. कोयला । ८. सुलगाये ।

बिहारी

(सत्रहवीं शती-उत्तरार्ध)

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ ।
जा तन की झाँईं[1] परै, स्यामु[2] हरित-दुति[3] होइ ॥ १ ॥
अजौं तर्यौना[4] हीं रह्यौ, स्रुति[5] सेवत इक रंग ।
नाक-बास[6] बेसरि[7] लह्यौ, बसि मुकतनु[8] कैं संग ॥ २ ॥
नहिं पराग, नहिं मधुर मधु, नहिं बिकासु इहिं काल ।
अली, कली ही सौं बँध्यौ, आगैं कौन हवाल[9] ॥ ३ ॥
तंत्री-नाद, कवित्त-रस, सरस-राग रति-रंग ।
अनबूड़े बूड़े[10], तरे जे बूड़े, सब अंग ॥ ४ ॥
प्रगट भए द्विजराज-कुल,[11] सुबस[12] बसे ब्रज आइ ।
मेरे हरौ कलेस सब, केसव केसवराइ[13] ॥ ५ ॥
या अनुरागी चित्त की गति समुझै नहिं कोइ ।
ज्यौं ज्यौं बूड़ै स्याम रँग, त्यौं त्यौं उज्जलु होइ ॥ ६ ॥
कैसैं छोटे नरनु तैं सरत बड़नु के काम ।
मढ़्यौ दमामौ[14] जातु क्यौं, कहि चूहे कैं चाम ॥ ७ ॥
जप माला, छापैं, तिलक सरै न एकौ कामु ।
मन-काँचै[15] नाचै वृथा, साँचै राँचै रामु ॥ ८ ॥

---

१. परछाँहीं, झाँकी, ध्यान । २. श्याम वर्ण, श्रीकृष्ण, कल्मष । ३. हत-द्युति (तेजहीन), हराभरा, प्रसन्न, हरे रंग वाला । ४. अधोवर्ती, कर्ण-भूषण, (तरकी) । ५. श्रुति, कान । ६. स्वर्ग का निवास, नासिका-निवास । ७. नाक का गहना, महाअधम प्राणी । ८. जीवन्मुक्त, मोती । ९. दशा । १०. बूड़े=डूबे, नष्ट हुए, निमग्न हुए, लिप्त हुए । ११. चंद्रवंश; ब्राह्मणवंश । १२. स्ववश । १३. श्रीकृष्ण (केसव=सुन्दर केशों वाले), बिहारी के पिता । १४. बड़ा नगाड़ा । १५. कच्चे मनवाला ही ।

मोहन-मूरति स्याम की, अति अद्भुत गति जोइ[१] ।
बसतु सु चित अंतर तऊ, प्रतिबिंबितु जग होइ ॥ ९ ॥
बड़े न हूजै गुननु विनु विरद-बड़ाई पाइ ।
कहत धतूरे सौं कनकु, गहनौ गढ़्यो न जाइ ॥ १० ॥

कनकु कनक[२] तैं सौगुनौ, मादकता अधिकाइ ।
उहिं खाऐं बौराइ इहिं, पाऐं हीं बौराइ ॥ ११ ॥
तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु ।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग, पग पग होतु प्रयागु ॥ १२ ॥

संगति सुमति न पावहीं, परे कुमति कैं धंध ।
राखौ मेलि कपूर मैं, हींग न होइ सुगंध ॥ १३ ॥
गिरि तैं ऊँचे रसिक-मन, बूड़े जहाँ हजारु ।
वहै सदा पसु नरनु कौं प्रेम-पयोधि पगारु[३] ॥ १४ ॥

जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सु बीति बहार ।
अब, अलि! रही गुलाब मैं, अपत[४], कँटीली डार ॥ १५ ॥
स्वारथु, सुकृतु न, श्रम वृथा, देखि, विहंग बिचारि ।
बाज, पराऐं पानि परि, तूँ पच्छीनु[५] न मारि ॥ १६ ॥
नर की अरु नल-नीर[६] की, गति एकै करि जोइ ।
जेतौ नीचौ ह्वै चलै, तेतौ ऊँचौ होइ ॥ १७ ॥

बढ़त बढ़त संपति सलिलु, मनसरोजु बढ़ि जाइ ।
घटत घटत सु न फिरि घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ॥ १८ ॥
कोरि (कोटि) जतन कोऊ करौ, परै न प्रकृतिहि बीच ।
नल बल जल ऊँचैं चढ़ै, अंत नीच कौ नीचु ॥ १९ ॥

---

१. देखो । २. कनक = सोना, धतूरा । ३. खाई । ४. पत्र-रहित । ५. पक्षियों को, अपने पक्षवालों को (शाहजहाँ की ओर से लड़ने वाले मिर्जा राजा जयसिंह पर यह अन्योक्ति है)। ६. फुहारे के नल का जल ।

गुनी गुनी सबकैं कहैं, निगुनी गुनी न होतु ।
सुन्यौ कहूँ तरु अरक[1] तैं, अरक-समानु उदोतु ॥ २० ॥
दृग उरझत, टूटत कुटुम, जुरत चतुर-चित प्रीति ।
परति गाँठि दुरजन हियै, दई नई यह रीति ॥ २१ ॥
जनमु जलधि, पानिपु[2] बिमलु, भौ जग आघु[3] अपारु ।
रहै गुनी[4] ह्वै गर-पर्यौ[5], भलै न मुकता हारु ॥ २२ ॥
मोर मुकुट की चंद्रिकनु यौं राजत नँदनंद ।
मनु ससिसेखर की अकस[6] किय सेखर सत चंद ॥ २३ ॥
करौ कुवत[7] जगु, कुटिलता तजौं न, दीन दयाल ।
दुखी होहुगे सरल हिय बसत त्रिभंगी लाल ॥ २४ ॥
पटु पाँखै, भखु[8] काँकरै, सपर[9] परेई संग ।
सुखी परेवा पुहुमि[10] मैं एकै तुँहीं विहंग ॥ २५ ॥
गोधन तूँ हरष्यौ हियै घरियक[11] लेहि पुजाइ ।
समुझि परैगी सीस पर परत पसुनु के पाइ ॥ २६ ॥

---

१. अरक=अर्क (सूर्य), मदार का वृक्ष । २. चमक, आबरू । ३. आदर, अर्हा (मूल्य)। ४. डोरे में गुँथा, गुणों वाला । ५. गले में पड़ा हुआ, गले पड़ा (निरादृत)। ६. वैर । ७. निन्दा । ८. भक्ष्य । ९. पक्षयुक्त, सर्वत्र सहगामिनी । १०. पृथिवी । ११. एक घड़ी भर ।

भूषण

(सत्रहवीं शती उत्तरार्ध)

पीय पहारन पास न जाहु यों तीय बहादुर सों कहैं सौंषैं[1] ।
कौन बचैहैं नवाब तुम्हें भनि भूषन भौंसिला भूप के रोषैं[2] ? ॥
वन्दि सइस्तखँहूँ[3] को कियो जसवन्त[4] से भाऊ[5] करन्न[6] से दोषैं[7] ।
सिंह सिवा के सुबीरन सों गो[8] अमीर न बाँचि गुनीजन घोषैं[9] ॥१॥

एक समै सजि कै सब सैन सिकार को आलमगीर[10] सिधाए ।
"आवत है सरजा[11] सम्हरौ" यक ओर ते लोगन बोल जनाए ॥
भूषन भो भ्रम औरंग के सिव भौंसिला भूप की धाक धुकाए[12] ।
धाय कै "सिंह" कह्यो समुझाय करौलनि[13] आय अचेत उठाए ॥२॥

दच्छिन नायक[14] एक तुही भुव भामिनि को अनुकूल[15] ह्वै भावै ।
दीनदयाल न तो सो दुनी पर म्लेच्छ के दीनहिं[16] मारि मिटावै ॥
श्री सिवराज भनै कवि भूषन तेरे सरूप को कोउ न पावै ।
सूर-सुवंस[17] मैं सूर-सिरोमनि ह्वै करि तू कुलचन्द कहावै ॥३॥

---

१. सौगन्ध खिलाकर। २. क्रोध से। ३. शाइस्ता खाँ को भी (शाइस्ता खाँ १६६३ ई० में पूना विजय कर वहीं ठहरा। शिवाजी ने एक रात को हमला किया। महल की खिड़की से कूदकर भागते समय शाइस्ता खाँ पर शिवाजी ने तलवार चलायी। उसका शिर बच गया पर एक हाथ की कुछ उँगलियाँ कट गयीं)। ४. मारवाड़ के महाराज यशवंत सिंह। ५. बूँदी के राजा भाऊसिंह। ६. बीकानेर के कर्ण सिंह (तीनों औरंगजेब के पक्षपाती थे)। ७. दोष देते हैं। ८. गया। ९. कहते हैं। १०. औरंगजेब। ११. सिंह, शिवाजी। १२. शङ्कित हुए। १३. शिकार खेलनेवाले। १४. दक्षिण देश का राजा, दक्षिण नायक। १५. अनुकूल नायक। १६. मजहब। १७. सूर्य का श्रेष्ठ वंश।

यों कवि भूषन भाषत है यक तौ पहिले कलिकाल की सैली ।
तापर हिन्दुन की सब राह सुनौरँग साह करी अति मैली ॥
साहि तनै सिव के डर सों तुरकौ गहि वारिधि की गति पैली[१] ।
वेद पुरानन की चरचा अरचा दुज देवन की फिरि फैली ॥४॥

दीन दयालु दुनी[२] प्रतिपालक जे करता निरम्लेच्छ मही के ।
भूषन भूधर-उद्धरिवो[३] सुने और जिते गुन ते सब जी के ॥
या कलि में अवतार लियो तऊ तेई सुभाय सिवा जी बली के ।
आय धरथो हरि ते नररूप पै काज करै सिगरे हरि ही के ॥५॥

साहिन के उमराव जितेक सिवा सरजा सब लूटि लए हैं ।
भूषन ते विन दौलति ह्वै कै फकीर ह्वै देस विदेस गए हैं ॥
लोग कहैं इमि दच्छिन-जेय[४] सिसौदिया रावरे हाल ठए[५] हैं ?
देत रिसाय कै उत्तर यों हम ही दुनियाँ ते उदास भए हैं ॥६॥

---

१. तुर्कों ने समुद्रपार का रास्ता पकड़ा। २. संसार। ३. पहाड़ का उद्धार करना, गोवर्धन धारण। ४. दक्षिण को जीतने वाला। ५. किया है।

शिवा बावनी

बाने[1] फहराने घहराने घंटा गजन के
नाहीं ठहराने राव राने देस देस के ।
नग भहराने ग्राम नगर पराने[2] सुनि
बाजत निसाने[3] सिवराज जू नरेस के ॥
हाथिन के हौदा उकसाने, कुंभ कुंजर के,
भौन को भजाने[4] अलि, छूटे लट केस[5] के ।
दल[6] के दरारेन[7] ते कमठ करारे[8] फूटे
केरा के से पात बिहराने फन सेस के ॥ १ ॥

ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहनवारी,
ऊँचे घोर मंदर के अंदर रहाती हैं ।
कंदमूल भोग करैं कंदमूल भोग करैं
तीन बेर खातीं ते वै तीन बेर खाती हैं ॥
भूषन सिथिल अंग भूखन सिथिल अंग
बिजन डुलातीं ते वै बिजन डुलाती हैं ।
भूषन भनत सिवराज बीर तेरे त्रास
नगन जड़ातीं ते वै नगन जड़ाती हैं ॥ २ ॥

चकित चकत्ता[9] चौंकि चौंकि उठै बार बार
दिल्ली दहसति[10] चितै चाह करषति[11] है ।

---

१. झंडे । २. (पलायन) भाग गये । ३. डंका । ४. भाग गये । ५. स्त्र-नारियों के केशों की लटें छूट गयीं । ६. सेना । ७. रगड़ । ८. कठोर । मंदर = मकान, पर्वत । कंदमूल = कन्दमूलक (मिष्ठान्न), शकरकन्द । बेर = बार, बेर के फल । भूषन (भूखन) = गहने से, भूख से । बिजन = पंखा, निर्जन । नगन = नग, नंगे शरीर । ९. औरंगजेब । १०. भय । ११. औरंगजेब के चित्त को (शिवाजी की सेना की खबर सुनने की उत्सुकता) आकृष्ट करती है ।

विळखि वदन बिलखात विजैपुरपति
फिरत फिरंगिनि की नारी[१] फरकति है ॥
थर थर काँपत कुतुबसाह गोलकुंडा
हहरि[२] हबस-भूप भीर भरकति है ।
राज सिवराज के नगारन की धाक[३] सुनि
केते पातसाहन की छाती दरकति है ॥ ३ ॥

दुग्ग पर दुग्ग जीते सरजा सिवाजी गाजी
उग्ग पर उग्ग नाचे रुंड मुंड फरके ।
भूषन भनत बाजे जीत के नगारे भारे
सारे करनाटी भूप सिंहल को सरके ॥
मारे सुनि सुभट पनारे-वारे[४] उद्भट
तारे लगे फिरन[५] सितारे गढ़धरके[६] ।
बीजापुर बीरन के गोलकुंडा धीरन के
दिल्ली उर मीरन के दाड़िम से दरके[७] ॥ ४ ॥

राखी हिंदुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो
अस्मृति[८] पुरान राखे वेदविधि सुनी मैं ।
राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की
धरा में धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मैं ॥
भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की
देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं ।
साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी
दिल्ली दल दावि कै दिवाल[९] राखी दुनी मैं ॥ ५ ॥

---

१. नाड़ी । २. त्रस्त होकर । ३. गर्जन । उग्ग=वायु मंडल, शिव । ४. परनाले के (चालकुंड में ईसाई किला के) । ५. भाग्य फिरने लगा, सौभाग्योदय हुआ । ६. शिवाजी । ७. फट गये । ८. स्मृति । ९. सीमा, मर्यादा ।

देव

(अट्ठारहवीं शती)

ऐसो जो हौं जानतो कि जैहै तू विषय सँग
ऐरे मन मेरे, हाथ पाँव तेरे तोरतो ।
आजु लौं हौं कत नर नाहन की नाहीं सुनि
नेह सों निहारि हारि बदन निहोरतो ॥
चलन न देतो 'देव' चंचल अचल करि,
चाबुक चितावनीन मारि मुँह मोरतो ।
भारी प्रेम पाथर नगारो दै गरे सों बाँधि,
राधावर-विरुद के बारिधि में बोरतो ॥ १ ॥

औचक अगाध सिंधु स्याही को उमगि आयौ
तामें तीनो लोक बूड़ि गये एक संग में ।
कारे कारे कागद लिखे ज्यों कारे आखर
सु न्यारे करि बाँचै कौन नाचे चित भंग में ॥
आँखिन में तिमिर अमावस की रैन अरु
जंबू रस बूँदि जमुना जल तरंग में ।
यों ही मन मेरो मेरे काम को न रह्यौ 'देव'
स्याम रँग ह्वै करि समान्यौ स्याम रंग में ॥ २ ॥

डारि द्रुम पलना बिछौना नव पल्लव के
सुमन झँगूला सोहै तन छवि भारी दै ।
पवन झुलावै केकी कीर बतरावै 'देव'
कोयल हलावै हुलसावै करतारी दै ॥
परत पराग सों उतारो करै राई नोन
कुन्दकली नायिका लतान सिर सारी दै ।
मदन महीप जू को बालक बसन्त ताहि
प्रात ही जगावत गुलाब चटकारी दै ॥ ३ ॥

धार में धाय[१] धँसी निरधार ह्वै, जाय फँसी उकसी[२] न अबेरी[३] ।
री अँगराय[४] गिरीं गहिरी,[५] गहि फेरे फिरीं न, घिरी नहिं घेरी ।
'देव' कछू अपनो बसना, रस लालच लाल चितैं[६] भई चेरी ।
वेगिहि बूड़ि गई पँखियाँ, अँखियाँ मधु की मखियाँ भई मेरी ॥ ४ ॥

साँसन ही में समीर[७] गयो अरु आँसुन ही सब नीर[८] गयो ढरि ।
तेज[९] गयो गुन लै अपनो अरु भूमि[१०] गयी तनु की तनुता करि ।
'देव' जियै मिलिबेई की आस कै आसहु पास अकास[११] रह्यो भरि ।
जा दिन तें मुख फेरि हरै हँसि हेरि[१२] हियो जु लियो हरि जू हरि ॥ ५ ॥

---

१. दौड़कर । २. निकल सकीं । ३. देर । ४. अँगड़ाकर । ५. गहरे में । ६. देखकर, हृदय से । ७–११. पञ्चतत्त्व का नष्ट होना । १२. देखकर ।

घनानन्द

(अट्ठारहवीं शती)

परकाजहि[१] देह को धारे फिरौ परजन्य[२] जथारथ ह्वै दरसौ[३] ।
निधि नीर[४] सुधा के समान करौ सबही विधि सज्जनता सरसौ[५] ॥
घनआनँद जीवनदायक[६] हौ कछु मेरियै पीर हिये परसौ[७] ।
कबहूँ वा बिसासी[८] सुजान के आँगन मो अँसुवानि कौं लै बरसौ ॥१॥

पहिले अपनाय सुजान सनेह सों क्यों फिरि तेहिकैं[९] तोरियै जू ।
निरधार अधार ह्वै झार मँझार[१०] दई[११] ! गहि बाँह न बोरियै जू ॥
'घनआनँद' आपने चातक कौं गुन बाँधिकै मोह न छोरियै जू ।
रस प्याय कै ज्याय[१२], बढ़ाय कै प्यास, बिसास मैं यों बिस घोरियै जू ॥२॥

अति सूधो सनेह कौ मारग है जहाँ नैकु सयानप बाँक नहीं[१३] ।
तहाँ साँचे चलैं तजि आपुनपौ[१४] झझकैं कपटी जे निसाँक[१५] नहीं ॥
'घनआनँद प्यारे' सुजान सुनौ यहाँ एक ते दूसरो आँक नहीं ।
तुम कौन धौं पाटी पढ़े हौ कहौ मन लेहु पै देहु छटाक[१६] नहीं ॥३॥

तब[१७] तौ छबि पीवत जीवत है अब[१८] सोचन लोचन जात जरे ।
हित[१९] पोष[२०] के तोष[२१] सुप्रान पले बिललात[२२] महादुख दोष भरे ॥
'घनआनँद' मीत सुजान बिना सबही सुख साज समाज टरे ।
तब हार पहार से लागत है अब आनि कै बीच पहार परे ॥४॥

---

१. परार्थ। २. बादल (दूसरे के लिए)। ३. दीख पड़ो। ४. नीर-निधि (समुद्र)। ५. फैलाओ। ६. जल, प्राण, नव-जीवन देनेवाले। ७. अनुभव करो (स्पर्श करो)। ८. विश्वासी। ९. उसको (स्नेह को)। १०. बीच धारा में। ११. दैव। १२. जिलाकर। १३. जहाँ थोड़ी भी चतुराई या टेढ़ाई नहीं है। १४. स्वार्थ। १५. निःशङ्क। १६. छटा+एक (ब्रजभाषा की सन्धि–छटाक), सेर का सोलहवाँ हिस्सा। १७. संयोगावस्था में। १८. वियोग-काल में। १९. प्रिय, प्रेमी। २०. पोषण। २१. संतोष। २२. दुःखी हो रहे हैं। हार* (हारो नारोपितः कण्ठे मया विश्लेष-भीरुणा। इदानीमावयोर्मध्ये सरित्-सागर-भूधराः)।

एरे बीर पौन, तेरो सबै ओर गौन[1], वारी[2],
तो सों और कौन मनौं ढरकौहीं बानि[3] दै ।
जगत के प्रान ओछे बड़े को समान,
घन आनँद निधान सुखदानि[4] दुखियानि दै ॥
जान उजियारे गुनभारे[5] अन्त मोही प्यारे,
अब ह्वै अमोही बैठे पीठि पहिचानि दै ।
विरह विथा की मूरि[6] आँखिन में राखौं पूरि[7],
धूरि तिन पायन की हा हा नैकु आनि दै ॥

---

१. गमन, गति । २. मिलाने वाला, संघटक । ३. द्रवित होने की आदत ।
४. सुख का दान । ५. गुणपूर्ण । ६. जड़ी, मूल । ७. [illegible] ।

पद्माकर

(उन्नीसवीं शती)

स्फुट

सम्पति सुमेर की कुवेर की जो पावै ताहि,
तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना।
कहै 'पद्माकर' सु हेम[1] हय हाथिन के,
हलके[2] हजारन के वितरि बिचारै ना।
दीन्हें गज बकस[3] महीप रघुनाथ राव[4],
पाय गज धोखे कहूँ काहू देइ डारै ना।
या ही डर गिरिजा गजानन को गोय रही[5],
गिरितें गरेतें[6] निज गोद तें उतारै ना ॥ १ ॥

व्याध[7] हूँ तें विहद[8] असाधु हौं अजामिल लौं,
ग्राह तें गुनाही[9] कहौ तिन में गिनाओगे।
स्यौरी[10] हौं न सूद्र[11] हौं न केवट कहूँ को त्यौंन,
गौतमी तिया[12] हौं जा पै पग धरि आओगे।
राम सों कहत 'पद्माकर' पुकारि तुम,
मेरे महापापन को पारहू न पाओगे।
झूठी ही कलंक सुनि सीता ऐसी सती तजी,
साँचौ हौं कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे ॥ २ ॥

---

१. सोना। २. मण्डल। ३. बख्श देना, दे देना, इनाम देना। ४. 'रघुनाथ राव' पेशवा, सितारे के महाराज थे। इन्होंने पद्माकर को एक लाख रुपये और दस गाँव दिये थे। ५. छिपा रही है। ६. गले से। ७. श्रीकृष्ण को मारने वाला। ८. बेहद, बढ़कर। ९. अपराधी। १०. शबरी (भिल्लिनी)। ११. शूद्र शम्बूक (राम के राज्य में तपस्या करता था)। १२. अहल्या।

ऋतु-वर्णन

मल्लिकन[१] मंजुल मलिंद मतवारे मिले,
मंद मंद मारुत मुहीम[२] मनसा[३] की है।
कहै 'पद्माकर' त्यों नदन नदीन नित,
नागर नवेलिनकी[४] नजर नसा की है।
दौरत दरेरो[५] देत दादुर सु दुंदै[६] दीह[७],
दामिनी दमकत दिसान में दसा[८] की है।
बद्दलनि[९] बुंदनि बिलोकौ बगुलान बाग,
बँगलान बेलिन बहार बरषा की है॥ ३॥

तालन[१०] पै ताल[११] पै तमालन पै मालन पै,
बृन्दावन बीथिन बहार वंसीवट पै।
कहै 'पद्माकर' अखंड रास मंडल पै,
मंड़ित उमंडि[१२] महा कालिंदी के तट पै।
छिति पर छान[१३] पर छाजत छतान[१४] पर,
ललित लतान पर लाड़िली के लट पै।
आई भली छाई यह सरद-जुन्हाई[१५], जिहि,
पाई छवि आजु ही कन्हाई के मुकुट पै॥ ४॥

कूलन में केलि में[१६] कछारन में कुंजन में,
क्यारिन में कलिन कलीन किलकंत[१७] है।
कहै 'पद्माकर' परागन में पौनहू में,
पानन में पिक में पलासन पगंत[१८] है।

---

१. जूही। २. युद्ध, चढ़ाई। ३. मनोज। ४. नागरिका नवयुवतियों की
५. धावा। ६. ऊधम। ७. दीर्घ। ८. दशों। ९. बादलों से। १०. ताड़ वृक्ष
११. तालाब। १२. उमंड़कर। १३. खपरैल, छानी, छप्पर। १४. छतों। १५.
शरज्ज्योत्स्ना। १६. खेल। १७. किलकता है। १८. पगा हुआ, छाया हुआ है

द्धार में दिसान में दुनी में देस देसन में
देखौ दीप दीपन में दीपत[1] दिगंत है ।
बीथिन में ब्रज में नवेलिन में बेलिन में
बनन में बागन में बगरो[2] बसंत है ॥५॥

गङ्गा-लहरी

कूरम[3] पै कोल[4] कोलहू पै सेष कुण्डली[5] है
कुण्डली पै फबी फैल सुफन हजार की ।
कहै 'पद्माकर' त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति[6] रजत पहार की ।
रजत पहार पर संभु सुरनायक हैं,
संभु पर ज्योति जटा जूट है अपार की ।
सम्भु जटा जूट पै चन्द की छुटी है छटा
चन्द की छटान पै छटा है गंगधार की ॥६॥

जैसे तैं न मोकौं कहूँ नेकहू डरात हुतो[7],
तैसो अब तोसों होंहूँ नेकहू न डरिहौं ।
कहै 'पद्माकर' प्रचंड जो परैगो तौ
उमँड़ि करि तोसों भुजदंड ठोकि[8] लरिहौं ।
चलो चलु, चलो चलु, विचलु न[9] बीचही तें,
कीच बीच नीच तौ कुटुम्ब को कचरिहौं[10] ।
ए रे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
गंगा की कछार में पछार छार करिहौं ॥७॥

---

१. दीप्त, प्रकाशित । २. फैला, विकीर्ण । ३. कूर्म, कच्छप भगवान् । ४. वाराह भगवान् । ५. गेंडुर । ६. स्थिति । ७. डरते थे । ८. ताल-ठोककर । ९. भागना मत । १०. पीस डालूँगा ।

विधि के कमंडलु की सिद्धि है प्रसिद्ध यही,
हरि-पद-पंकज-प्रताप की लहर[1] है ।
कहै 'पद्माकर' गिरीस-सीस-मंडल के,
मुंडन की माल ततकाल अघहर[2] है ।
भूपति-भगीरथ के रथ को सुपुन्य-पथ[3],
जह्नु-जप-जोग-फल-फैल[4] की फहर[5] है ।
छेम की छहर, गंगा रावरी लहर, कलि-
काल को कहर[6], जम-जाल को जहर है ।। ८ ।।

---

१. उमंग । २. तत्क्षण पापनाशिनी । ३. प्रशस्त मार्ग । ४. विस्तारकी ५. पताका है । ६. विपत्ति ।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

[जन्म—सं० १९०७ भा० शु० ७] [मृत्यु—सं० १९४२]

परिचय

कवित्त

सेवक गुनीजन के, चाकर[1] चतुर के हैं,
कविन के मीत, चित हित गुनगानी[2] के।
सीधन सों सीधे, महाबाँके हम बाँकन[3] हों,
हरीचन्द नगद दमाद अभिमानी के।
चाहिबे की चाह, काहू की न परवाह, नेही,
नेह के दिवाने सदा सूरत[4] निमानी[5] के।
सरबस रसिक के, दास-दास[6] प्रेमिन के,
सखा प्यारे कृष्ण के, गुलाम राधा रानी के॥ १॥

इन दुखियान को न चैन सपनेहूँ मिल्यो
तासों सदा व्याकुल विकल अकुलायँगी।
प्यारे हरिचन्द जू की बीती जानि औध[7] प्रान
चाहत चले पै ये तो संग न समायँगी।
देख्यौ एकबार हू न नैन भरि तोहि या तें,
जौन[8] जौन लोक जैहें तहां पछितायँगी।
विना प्रान प्यारे भये दरस तुम्हारे हाय,
मरेहू पै आँखें ये खुली ही रहि जायँगी॥ २॥

---

१. नौकर। २. गुणज्ञ। ३. वक्र (टेढ़ेसे)। ४. अनुकूल। ५. विनयी। ६. दासानुदास। ७. अवधि। ८. जिस।

दोहा

भरित नेह नवनीर नित, बरसत सुरस अथोर[1] ।
जयति अपूरब घन[2] कोऊ, लखि नाचत मन मोर[3] ॥ १ ॥
चंद मिटै, सूरज मिटै, मिटै जगत कै नेम ।
पै दृढ़ श्री हरिचंद कौ, मिटै न अविचल प्रेम ॥ २ ॥
डरै सदा चाहै न कछु, सहै सबै जो होय ।
रहै एक रस चाहिकै, प्रेम बखानौ सोय ॥ ३ ॥
सब दीनन की दीनता, सब पापिन को पाप ।
सिमिटि आइ मोमें रह्यो, यह मन समुझहु आप ॥ ४ ॥
चोरि[4] चीर दधि दूध मन, दुरन[5] चहत ब्रजराय ।
मेरे हिय अँधियार मैं, तौ न छिपत क्यों आय ॥ ५ ॥
देखन देहुँ न आरसी[6], सुन्दर नन्दकुमार ।
कहुँ मोहित ह्वै रूप निज, मति मोहि देहु बिसारि ॥ ६ ॥
प्रान नाथ, ब्रजनाथ जू, आरतिहर नँदनंद ।
धाइ भुजा भरि राखिए, डूबत भव हरिचंद ॥ ७ ॥

'प्रेम-माधुरी'

सवैये

रोकहिं जौं तो अमंगल होय औ प्रेम नसै जो कहैं प्रिय जाइए ।
जो कहैं जाहु न तौ प्रभुता जौं कछू न कहैं तो सनेह नसाइए ।
ज्यौ हरिचन्द कहैं तुम्हरे बिन जीहैं न तौ यह क्यों पतिआइए[7] ।
ता सों पयान समैं[8] तुम तें हम का कहैं आपै हमैं समुझाइए ॥ १ ॥

---

१. अस्तोक (थोड़ा नहीं)। २. बादल, घनश्याम । ३. मयूर का मन, मेरा मन (मोर-मन)। ४. चुराकर । ५. छिपना । ६. दर्पण । ७. कैसे विश्वास हो । ८. प्रयाण के समय [प्रवत्स्यत्-पतिका की उक्ति] ।

दीन दयाल कहाइ कै धाइ कै दीनन सों क्यों सनेह बढ़ायो ?
त्यों हरिचन्द जू वेदन में[1] करुनानिधि नाम कहो क्यों गवायो ?
एती[2] रुखाइ[3] न चाहिए तापै[4] कृपा करिकै जेहि को अपनायो ?
ऐसो ही जो पै सुभाव रह्यो तो गरीबनेवाज[5] क्यों नाम धरायो ? ॥ २ ॥

वह सुन्दर रूप बिलोकि सखी मन हाथ तें मेरे भग्यो सो भग्यो[6] ।
चित माधुरि मूरति देखत हीं हरिचन्द जू जाय पग्यो सो पग्यो[7] ।
मोहिं औरन सों कछु काम नहीं अब तौ जो कलंक लग्यो सो लग्यो ।
रँग दूसरो और चढ़ैगो नहीं अलि साँवरो रंग रँग्यो सो रँग्यो ॥ ३ ॥

ऊधो जू सूधो गहो वह मारग[8] ग्यान की तेरी जहाँ गुदरी[9] है ।
कोऊ नहीं सिख[10] मानिहै ह्याँ, इक स्याम की प्रीति प्रतीति खरी है[11] ।
ये ब्रजबाला सबै इकसी हरिचंद जू मंडली ही बिगरी है ।
एक जो होय तो ग्यान सिखाइए, कूप ही में यहाँ भाँग परी है[12] ॥ ४ ॥

व्यापक ब्रह्म सबै थल पूरन हैं हमहूँ पहिचानती हैं ।
पै बिना नन्दलाल बिहाल[13] सदा हरिचन्द न ज्ञानहिं ठानती[14] हैं ।
तुम ऊधो यहै कहियो उनसों हम और कछू नहिं जानती हैं ।
पिय प्यारे निहारे तिहारे बिना अँखियाँ दुखियाँ नहीं मानती हैं ॥ ५ ॥

'यमुना-छवि'

तरनि-तनूजा[15]-तट-तमाल-तरुवर बहु छाये ।
झुके कूल सों जल-परसन-हित मनहु सुहाये ।
किधौं मुकुर में लखत उझकि[16] सब निज निज सोभा ।
कै प्रनवत[17] जल जानि परम पावन, फल-लोभा ॥

---

१. वेदों में । २. इतनी । ३. रुक्षता । ४. उस व्यक्ति पर । ५. दीन-रक्षक । ६. भागा सो भाग ही गया । ७. अनुरक्त हो गया । ८. सीधी राह पकड़िये, रास्ता लीजिये । ९. कन्था । १०. शिक्षा । ११. खरा (विशुद्ध) प्रेम और विश्वास है । १२. (मुहावरा) एकमत या प्रमत्त हैं । १३. व्यग्र । १४. स्थिर रहती हैं । १५. सूर्य की लड़की (यमुना) । १६. झाँककर । १७. प्रणाम करते हैं ।

मनु आतप-वारन[१] तीर को, सिमिटि[२] सबै छाए रहत ।
कै हरि सेवा-हित नै[३] रहै, निरखि नैन-मन सुख लहत ॥ १ ॥

कहूँ तीर पर कमल अमल सोभित बहु भाँतिन ।
कहुँ सैवालन मध्य कुमुदनी लगि रहि पाँतिन ॥
मनु दृग धारि अनेक जमुन, निरखत ब्रज सोभा ।
कै उमँगे प्रिय-प्रिया[४]-प्रेम के अनगिन गोभा[५] ॥
कै करिकै कर बहु पीय को टेरत[६] निज ढिग[७] सोहई ।
कै पूजन को उपचार[८] लै, चलति मिलन, मन मोहई ॥ २ ॥

कै पिय-पद-उपमान जानि एहि[९] निज उर धारत ।
कै मुख करि बहु भृंगन मिस अस्तुति उच्चारत ॥
कै ब्रज-तिय-गन-बदन कमल की झलकत झाईं[१०] ।
कै ब्रज हरि-पद-परस-हेत कमला बहु आईं ॥
कै सात्विक[११]-अरु अनुराग दोउ, ब्रज-मंडल बगरे फिरत[१२] ।
कै जानि लच्मी-भौन[१३] यहि, करि सतधा[१४] निज जल धरत ॥ ३ ॥

तिनपै जेहि छन चंद-जोति राका[१५]-निसि आवति ।
जल में मिलि कै नभ-अवनी लौं तान[१६] तनावति ॥
होत मुकुर-मय सबै तबै उज्जल जल-ओभा[१७] ।
तन-मन-नैन जुड़ात देखि सुन्दर सो सोभा ॥

---

१. धूप रोकने के लिए। २. इकट्ठा होकर। ३. नत। ४. राधा-कृष्ण के प्रेम के। ५. अङ्कुर। ६. बुलाती है। ७. पास। ८. सामग्री। ९. इनको (फूलों को)। १०. छाया; परछाईं। ११. सत्त्व गुण। १२. फैले (बिखरे) फिरते हैं। १३. भवन। १४. शतधा, सैकड़ों रूप में। १५. पूर्णिमा की रात। १६. वितान, तम्बू। १७ आभा, चमक।

सो को कवि जो छवि कहि सकै ताछन[1] जमुना-नीर की ।
मिलि अवनि और अंबर रहति, छवि इकसी नभ तीर की ॥ ४ ॥

परत चन्द्र प्रतिबिंब कहूँ जल-मधि[2] चमकायौ ।
लोल-लहर-लहि नवत कबहुँ सोई मन भायौ ॥
मनु हरि-दरसन-हेत चंद जल बसत सुहायौ ।
कै तरंग-कर[3] मुकुर लिए सोभित छबि छायौ ॥
कै रास-रमन में हरि-मुकुट-आभा जल दिखरात है ।
कै जल-उर हरि-मूरति बसति, ता प्रतिबिंब लखात है ॥ ५ ॥

कबहुँ होत सत[4] चंद कबहुँ प्रगटत, दुरि भाजत ।
पवन-गवन-बस[5] बिंब-रूप जल में बहु साजत ॥
मनु ससि भरि अनुराग जमुन-जल लोटत डोलै ।
कै तरंग की डोर हिंडोरन करत कलोलै[6] ॥
कै बाल-गुड़ी[7] नभ में उड़ी सोहत इत उत धावती ।
कै अवगाहत[8] डोलत ब्रज कोऊ, ब्रज-रमनी जल आवती ॥ ६ ॥

मनु जुग पच्छ[9] प्रतच्छ[10] होत मिटि जात जमुन-जल ।
कै तारागन ठगत लुकत, प्रगटत ससि अविकल[11] ॥
कै कालिंदी-नीर तरंग जितो[12] उपजावत ।
तितनो ही धरि रूप मिलन हित तासों धावत ॥
कै बहुत रजत-चकई[13] चलत कै फुहार जल उच्छरत[14] ।
कै निसि-पति मल्ल[15] अनेक विधि उठि बैठत कसरत करत ॥ ७ ॥

---

१. तत् क्षण, उस समय की । २. मध्य, में । ३. तरङ्ग रूपी हाथों में । ४. शत । ५. वायु की चाल के कारण । ६. क्रीड़ा । ७. लड़कों की पतङ्ग । ८. थाह लेती हुई । ९. शुक्ल और कृष्ण (दोनों) पक्ष । १०. प्रत्यक्ष । ११. सम्पूर्ण रूप में । १२. जितनी । १३. चाँदी की चकई । १४. उछल रही हैं । १५. पहलवान ।

कहूँ वालुका बिमल सकल कोमल वहु छाई ।
उज्ज्वल झलकत, रजत-सीढ़ि मनु सरस सुहाई ॥
पिय के आगम हेत पाँवड़े मनहुँ बिछाए ।
रतन-रासि करि चूर[1] कूल में मनु बगराए[2] ॥
मनु मुक्त-माँग[3] सोभित भरी, स्याम-नीर-चिकुरन[4] परसि ।
सतगुन[5] छायो कै नीर में, ब्रज-निवास लखि हिय हरसि ॥ ८ ॥

---

१. चूर्ण करके । २. फैलाये हैं । ३. मोतियों से भरी माँग । ४. श्याम-जल रूपी बाल । ५. सत्वगुण (रंग सफेद है)।

अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

[जन्म—सं० १९२२] [मृत्यु—सं० २००४]

आँसू

आँख का आँसू ढलकता देखकर
जी तड़प करके हमारा रह गया ।
क्या गया मोती किसी का है बिखर
या हुआ पैदा रतन कोई नया ॥

× × ×

ओस की बूँदें कमल[1] से हैं कढ़ीं
या उगलती बूँद हैं दो मछलियाँ[2] ।
या अनूठी गोलियाँ चाँदी कढ़ी
खेलती हैं खञ्जनों की लड़कियाँ[3] ॥

× × ×

या जिगर पर जो फफोला था पड़ा,
फूट करके वह अचानक बह गया ।
हाय था अरमान जो इतना बड़ा,
आज वह कुछ बूँद बनकर रह गया ॥

× × ×

बू बनावट की तनक जिसमें न हो
चाह की छींटें न हों जिन पर पड़ीं ।
प्रेम के उन आँसुओं से हे प्रभो,
यह हमारी आँख तो भीगी नहीं ॥

---

१. 'कञ्ज-लोचन' । २. 'मीन से नेत्र' । ३. 'नैन सुखञ्जन-जातक से' ।

दीपावली

वसुधा हँसी लसी दिव दारा,
विलसित शरद सुधा-निधि द्वारा;
हुआ विभासित नील गगन-तल,
उच्च हिमालय मञ्जुल अञ्चल,
काश-प्रसून-समूह समुज्ज्वल
कमला-कलित[1] सकल पङ्कज दल,
चढ़ा पादपावलि पर पारा।
अमल-धवल आभाओं से लस[2],
बहा दिशाओं में अनुपम रस,
विभा गयी तृण वीरुध[3] में बस,
हुआ उमङ्गित मानव मानस,
चमका जगत-विलोचन-तारा।
मिले विमलता परम मनोरम,
बने नगर, पुर ग्राम दिव्य तम,
सुधा-धवल मन्दिर सुर-पुर-सम,
स्वच्छ सलिल सर-सरित-समुत्तम,
हुआ रजत-निभ[4] रज-कण सारा।
बना काल को कलित कान्तिधर
अमा निशा को आलोकित कर,
पावस-जनित कालिमाएँ हर,
दमक दीपमालाओं में भर,
घर घर वही ज्योति की धारा।

---

१. श्री-विभूषित। २. चमकता हुआ। ३. लता। ४. चाँदी के समान।

राधा की प्रेमा-भक्ति

विमुग्धकारी मधु मंजु मास था वसुन्धरा थी कमनीयतामयी ।
विचित्रता साथ विराजती रही वसन्त वासन्तिकता वनान्त में ।
नवीनभूता वन की विभूति में विनोदिता-वेलि विहंग वृन्द में ।
अनूपता व्यापित थी वसन्त की निकुञ्ज में कूजित-कुञ्ज-पुञ्ज में ॥
निसर्ग ने, सौरभ ने, पराग ने, प्रदान की थी अति कान्त भाव से ।
वसुन्धरा को, पिक को, मिलिन्द को, मनोज्ञता मादकता मदान्धता ॥
दिशा प्रसन्ना, महि पुष्प संकुला नवीनता पूरित पादपावली ।
वसन्त में थी लतिका सुयौवना, अलापिका पञ्चम तान कोकिला ॥
वसन्त-शोभा प्रतिकूल थी बड़ी, वियोगमग्ना व्रजभूमि के लिए ।
बना रही थी उसको व्यथामयी विकास पाती वन पादपावली ॥
बड़े यशस्वी वृषभानु-गेह के समीप थी एक विचित्र वाटिका ।
प्रबुद्ध[1] ऊधो इसमें इन्हीं दिनों प्रबोध[2] देने व्रज देवि को गये ॥
विराजती थीं वृषभानु-नन्दिनी इसी बड़े नीरव शान्त कुञ्ज में ।
अतः यहीं श्री बलवीर-बन्धु[3] ने उन्हें विलोका अलिवृन्द आवृता ॥
सप्रीति वे आदर के लिए उठीं विलोक आया व्रज-देव-बन्धु को ।
पुनः उन्होंने निज शान्त कुञ्ज में उन्हें बिठाया अति भक्ति भाव से ॥
अतीव सम्मान समेत आदि में व्रजेश्वरी की कुशलादि पूछ के ।
पुनः सुधी[4] ऊधव ने सनम्रता कहा सँदेशा यह श्याम-मूर्तिका ॥

× × ×

प्राणाधारे, परम-सरले, प्रेम की मूर्ति राधे !
निर्माता ने पृथक् तुमसे यों किया क्यों मुझे है ?
प्यारी आशा प्रिय-मिलन की नित्य है दूर होती,
कैसे ऐसे कठिन पथ का पान्थ[5] मैं हो रहा हूँ ?

---

१. (ब्रह्म) ज्ञानी । २. सान्त्वना (तत्त्वज्ञान द्वारा) । ३. कृष्ण सखा । ४. ज्ञानी, पण्डित । ५. राही, पथिक ।

उत्कण्ठा के विवश नभ को, भूमि को, पादपों को
ताराओं को, मनुज-मुख को प्रायशः देखता हूँ ।
प्यारी, ऐसी न ध्वनि मुझको है कहीं भी सुनाती ।
जो चिन्ता से चलित चित की शान्ति का हेतु होवे ।"

× × ×

अतीव हो अन्यमना विषादिता, विमोचते[1] वारि[2] दृगारविन्द से ।
समस्त सन्देश सुना व्रजेश का, व्रजेश्वरी ने उर वज्र सा बना ॥
पुनः उन्होंने अति शान्त भाव से कभी बहा अश्रु कभी सधीरता ।
कहीं स्वबातें बलवीर बन्धु से, दिखा कलत्रोचित[3] चित्त उच्चता ॥

मैं हूँ ऊधो पुलकित हुई आपको आज पाके ।
सन्देशों को श्रवण करके और भी मोदिता हूँ ।
मन्दीभूता उर तिमिर की ध्वंसिनी ज्ञान-आभा ।
उद्दीप्ता हो उचित गति से उज्ज्वला हो रही है ॥

× × ×

मेरी बातें श्रवण करके आप उद्विग्न होंगे,
जानेंगे मैं विवश वन के हूँ महा मोह मग्ना ।
सच्ची यों है न निज सुख के हेतु मैं मोहिता हूँ,
संरक्षा में प्रणय-पथ के भावतः हूँ सयत्ना ॥
हो जाती है विधि सृजन से इक्षु में माधुरी जो,
आ जाता है सरस रँग जो पुष्प की पंखड़ी में ।
क्यों होगा सो रहित रहते इक्षुता पुष्पता के,
ऐसे ही क्यों प्रसृत[4] उर से जीवनाधार होगा ॥

× × ×

१. छोड़ते, गिराते हुए । २. जल (आँसू) । ३. स्त्रीजनोचित । ४. अलग ।

जो होता है हृदय-तल का भाव लोकोपतापी[१]
छिद्रान्वेषी, मलिन, वह है तामसी वृत्ति वाला।
नाना भोगाकलित[२], विविधा-वासना-मध्य डूबा,
जो है स्वार्थाभिमुख वह है राजसी वृत्तिशाली।
निष्कामी है भव-सुखद है और है विश्व-प्रेमी,
जो है भोगोपरत[३] वह है सात्त्विकी-वृत्ति शोभी।
ऐसी ही है श्रवण करने आदि की भी व्यवस्था,
आत्मोत्सर्गी, हृदय-तल की सात्विकी वृत्ति ही है।
हो जाने से हृदय-तल का भाव ऐसा निराला,
मैंने न्यारे परम गरिमावान दो लाभ पाये।
मेरे जी में अनुपम महाविश्व का प्रेम जागा।
मैंने देखा परम प्रभु को स्वीय प्राणेश ही में।
शास्त्रों में है लिखित प्रभु की भक्ति निष्काम जो है,
सो दिव्या है मनुज तन की सर्व संसिद्धियों से।
मैं होती हूँ सुखित यह जो तत्त्वतः देखती हूँ
प्यारे की औ' परमप्रभु की भक्तियाँ है अभिन्ना॥
विश्वात्मा जो परम प्रभु है रूप तो हैं उसी के
सारे प्राणी सरि[४] गिरि लता बेलियाँ वृक्ष नाना।
रक्षा पूजा उचित उनका यत्न सम्मान सेवा।
भावों सिक्ता[५] परमप्रभु की भक्ति सर्वोत्तमा है।
कह चुकी प्रिय-साधन ईश का, कुँवर का प्रिय साधन है यही।
इसलिये प्रिय की परमेश की परम पावन भक्ति अभिन्न है॥

('प्रिय-प्रवास')

---

१. लोकपीड़क। २. भोगाबद्ध। ३. भोग-विरक्त। ४. नदी। ५. भाव से सींची हुई (भावमयी)।

जगन्नाथदास 'रत्नाकर'

[जन्म—सं० १९२३] [मृत्यु सं०—१९८९]

उद्धव-शतक

[गोपी-वचन]

आए हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तौपै
ऊधौ ये बियोग के बचन बतरावौ[1] ना ।
कहै रतनाकर दया करि दरस दीन्यौ
दुख दरिबै कौं[2], तोपै अधिक बढ़ावौ ना ॥
टूक-टूक ह्वैहैं मन-मुकुर हमारौ हाय
चूकि हूँ कठोर-बैन-पाहन चलावौ ना ।
एक मनमोहन तौ बसिकै उजारयौ मोहिं
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना ॥ १ ॥

रंग-रूप-रहित लखात सब ही हैं हमैं
वैसौ एक और ध्याइ धीर धरिहैं कहा ।
कहै रतनाकर जरी हैं बिरहानल मैं
और अब ज्योति कौं जगाइ जरिहैं कहा ॥
राखो धरि ऊधौ उतै[3] अलख अरूप ब्रह्म
तासौं काज कठिन हमारे सरिहैं[4] कहा ।
एक ही अनंग[5] साधि साध सब पूरीं अब
और अंग-रहित[6] अराधि करिहैं कहा ॥ २ ॥

---

१. बतलाना । २. दलन करने के लिए । ३. उधर ही । ४. (सरण=गमन) काम चलेगा । ५. काम (इससे कृष्ण में राग व्यक्त है) । ६. निर्गुण ब्रह्म ।

कर बिनु कैसैं गाय दूहिहै हमारी वह
पद बिनु कैसैं नाचि थिरकि रिझाइहैं ।
कहै रतनाकर बदन बिनु कैसैं चाखि
माखन, बजाइ बेनु गोधन गवाइहैं ॥
देखि सुनि कैसैं दृग स्रवन बिना हौं हाय
भोरे ब्रज-बासिनि की बिपति बराइहैं[1] ।
रावरौ अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारैं काम आइहैं ॥ ३ ॥

सरग न चाहैं अपबरग न चाहैं सुनौ
भुक्ति-मुक्ति दोऊ सौं बिरक्ति उर आनैं हम ।
कहै रतनाकर तिहारे जोग-रोग माहिं
तन मन साँसनि की,साँसति प्रमानैं हम ।
एक ब्रजचन्द कृपा-मन्द-मुसकानि हीं मैं
लोक परलोक कौ अनन्द जिय जानैं हम ।
जाके या बियोग-दुखहू मैं सुख ऐसौ कछू
जाहि पाइ ब्रह्मसुखहूँ मैं दुख मानैं हम ॥ ४ ॥

जग सपनौ सौ सब परत दिखाई तुम्हैं
ता तैं तुम ऊधौ हमैं सोवत लखात हौ ।
कहै रतनाकर सुनै को बात सोवत की
जोई मुँह आवत सो बिबस बयात हौ[2] ॥
सोवत मैं जागत लखत अपने कौं जिमि
त्यौं हीं तुम आपहीं सुज्ञानी समुझात हौ ।
जोग-जोग कबहूँ न जानैं कहा जोहि जकौ[3]
ब्रह्म-ब्रह्म कबहूँ बहकि बररात[4] हौ ॥ ५ ॥

१. टालेंगे (विपत्ति से अलग रखेंगे)। २. बड़बड़ाते हो। ३. रटन लगाते हो। ४. सपना (स्वप्न) देखते हुए बोलते हो।

मैथिलीशरण गुप्त

[जन्म—सं० १९४३]

(१)*

अच्छी आँख मिचौनी खेली,
बार बार तुम छिपो और मैं खोजूँ तुम्हें अकेली ।
किसी शान्त एकान्त कुञ्ज में तुम जाकर सो जाओ,
भटकूँ इधर उधर मैं, इसमें क्या रस है, बतलाओ ?
यदि मैं छिपूँ और तुम खोजो, अनायास ही पाओ,
कहाँ नहीं तुम जहाँ छिपूँ मैं, जाने भी दो आओ,
करें बैठ रँगरेली ।
अच्छी आँख मिचौनी खेली ।

पर जब तुम हो सभी कहीं, तब मैं ही क्यों यों भटकूँ,
चाहूँ जिधर उधर ही अपना भार पटक कर सटकूँ[1],
इसकी भी क्या आवश्यकता जो बाहर पर अटकूँ[2],
अन्तर[3] के ही अन्धकार में क्यों न पीत पट झटकूँ[4],
बन अपनी ही चेली ?
अच्छी आँख मिचौनी खेली ।

---

*[इसमें परोक्ष (आँखों से ओझल) सत्ता के साक्षात्कार के लिए आत्म
निवेदन है । प्रिय-दर्शन की रहस्यमयी लालसा उपनिषत्—प्रभावित है ।]

१. भ्रमण करूँ, भाग जाऊँ । २. उलझती रहूँ, लुभा जाऊँ । ३. अन्तरात्मा
४. (भगवान् के) पीताम्बर को पकड़ूँ ।

(२)*

दरसो[1] परसो[2] घन, बरसो ।
सरसो[3] जीर्ण-शीर्ण जगती के तुम नव-यौवन, बरसो ।
घुमड़ उठो आषाढ़, उमड़ कर पावन सावन, बरसो ।
भाद्र-भद्र[4] आश्विन के चित्रित हस्ति, स्वातिघन बरसो ।
सृष्टि-दृष्टि के अञ्जन-रञ्जन[5], ताप विभञ्जन, बरसो ।
व्यग्र उदग्र[6] जगज्जननी के, अयि अग्रस्तन[7], बरसो ।
गत सुकाल के प्रत्यावर्तन, हे शिखिनर्तन, बरसो ।
जड़ चेतन में बिजली भर दो, ओ उद्‌बोधन, बरसो ।
चिन्मय बनें[8] हमारे मृण्मय, पुलकाङ्कुर बन, बरसो ।
मन्त्र पढ़ो, छींटे दो, जागे सोये जीवन बरसो ।
घट पूरो त्रिभुवन मानसरस, कन कन छन छन बरसो ।
आज भींगते ही घर पहुँचे, जन-जन के जन[9], बरसो ।

(३)†

निरख सखी, ये खञ्जन आये,
फेरे उन मेरे रंजन ने नयन उधर मन भाये ।

---

* [साकेत के नवम सर्ग में प्रोषित-पतिका उर्मिला की उक्ति । (मेघ-दर्शन जनित-चित्त वृत्ति का प्रकाशन)]

१. देखो । २. स्पर्श करो । ३. रसमय बनो । ४. शुभकर (कृषि-उपकारी चौमासे के हस्त चित्रा स्वाती के बादलों का सङ्केत)। ५. अंजन युक्त (आनन्दप्रद घन)। ६. उभरे, उदार (देवी के लिए)। ७. स्तनाग्र श्याम (घन)। ८. [जड़ मिट्टी में वर्षा से बीजों का अँकुरना (पुलकित होना) उसे (चिन्मय) चेतनामय बनाना कहा गया है]। ९. आदमी (प्रिय)।

† (सुखद शारदीय-सुषमा के दर्शन से विरहिणी उर्मिला की प्रिय-दर्शन की आशा व्यक्त की गयी है)।

फैला उनके मन का आतप, मन ने सर सरसाये ।
घूमें वे इस ओर वहाँ, ये हंस यहाँ उड़ छाये ।
करके ध्यान आज इस जन का निश्चय वे मुसकाये ,
फूल उठे हैं कमल, अधर-से ये बन्धूक[१] सुहाये ।
स्वागत, स्वागत, शरद, भाग्य से मैंने दर्शन पाये ,
नभ ने मोती वारे, लो, ये अश्रु-अर्घ्य भर लाये ।

('साकेत' से)

(४)*

सो, अपने चञ्चलपन, सो !
पुष्कर[२] सोता है निज सर में,
भ्रमर सो रहा है पुष्कर में,
गुञ्जन सोया कभी भ्रमर में,
सो, मेरे गृह-गुञ्जन[३], सो ।
सो, मेरे अञ्चल-धन, सो !
तनिक पार्श्व-परिवर्त्तन[४] कर ले,
उस नासा-पुट को भी भर ले ।
उभय पक्ष का मन तू हर ले,
मेरे व्यथा-विनोदन[५], सो !
सो, मेरे अञ्चल-धन सो !

खञ्जन, शारदीय धूप, निर्मल-सर, बन्धूक और ओस के वर्णन से प्रिय (लक्ष्मण) का वर्णन हो गया है । १. दुपहरिया का फूल (''स्वप्नवासवदत्तम्'' का शरद्वर्णन देखिये) ।

* यशोधरा की लोरी (राहुल के लिए) । २. (नील) कमल । ३. गृह को मुखरित करने वाला । (मुखरित करता जो सद्म को या शुकों सा । 'हरिऔध') ४. करवट बदलना । ५. दुःख दूर करने वाला ।

रहे मन्द ही दीपक-माला
तुझे कौन भय-कष्ट-कसाला[1] ?
जाग रही है मेरी ज्वाला,
सो, मेरे आश्वासन, सो !
सो मेरे अञ्चल-धन सो !
ऊपर तारे झलक रहे हैं,
गोखों[2] से लग ललक रहे हैं,
नीचे मोती ढलक रहे हैं,
मेरे अपलक-दर्शन, सो !
सो, मेरे अञ्चल-धन सो !
तेरी साँसो का सुस्पन्दन,
मेरे तप्त-हृदय का चन्दन !
सो, मैं कर लूँ जी भर क्रन्दन !
सो, उनके[3] कुल नन्दन सो !
सो, मेरे अञ्चल-धन सो !
खेले मन्द-पवन अलकों[4] से,
पोछूँ मैं उनको पलकों से
छद-रद[5] की छवि की छलकों से।
पुलक-पूर्ण[6] शिशु-यौवन, सो ।
सो, मेरे अञ्चल-धन सो ।
('यशोधरा' से)

---

१. कठिनाई। २. गवाक्ष, झरोखा। ३. पति (गौतम) के। ४. केशों।
५. होठ-दाँत। ६. रोमाञ्च युक्त।

माखनलाल चतुर्वेदी

[जन्म—सं० १९४६ (४ अप्रैल १८८९)]

'जवानी'

आज अन्तर में लिये, पागल जवानी!
कौन कहता है कि तू विधवा हुई, खो आज पानी[1] ?
चल रही घड़ियाँ, चले नभ के सितारे,
चल रहीं नदियाँ, चलें हिमखण्ड प्यारे,
चल रही है साँस, फिर तू ठहर जाये?
दो सदी पीछे कि तेरी लहर जाये!
पहन ले नर-मुण्ड-माला उठ स्वमुण्ड सुभेष करले।
भूमि सा तू पहन बाना[2] आज धानी,
प्राण तेरे साथ है, उठ री जवानी।
द्वार बलि का खोल, चल, भूडोल[3] कर दें,
एक हिमगिरि, एक सिर का मोल कर दें,
मसल कर, अपने इरादों सी उठाकर,
दो हथेली हैं कि पृथ्वी गोल कर दे?
रक्त है? या है नसों में क्षुद्र पानी?
जाँच कर, तू सीस दे-देकर जवानी!
वह कली के गर्भ से फल-रूप में अरमान[4] आया!
देख लो, मीठा इरादा, किस तरह, शिर तान आया!
डालियों ने भूमि-रुख[5] लटका दिए फल, देख आली!
मस्तकों को दे रही सङ्केत कैसे, वृक्ष-डाली!

---

१. प्रतिष्ठा। २. साज। ३. क्रान्ति। ४. अभिलाषा। ५. नीचे की ओर।

फल दिया ? या सिर दिया ? तरु की कहानी,
गूँथ कर युग में[1], बताती चल जवानी !

श्वान के[2] सिर हो[3]—चरण तो चाटता है।
भौंक ले—क्या सिंह[4] को वह डाँटता है ?
रोटियाँ खायीं कि साहस खा चुका है,
प्राणि हो, पर प्राण से वह जा चुका है।

तुम न खेलो ग्राम-सिंहों[5] में भवानी[6] !
विश्व की अभिमान मस्तानी जवानी।

ये न मग हैं, तव चरण की रेखियाँ[7] हैं,
बलि दिशा[8] की अमर देखा-देखियाँ[9] हैं।
विश्व पर पद से लिखे कृति-लेख[10] हैं ये,
धरा-तीर्थों की दिशा की मेख[11] हैं ये।

प्राण-रेखा[12] खींच ये, उठ बोल रानी,
री मरण के मोल की चढ़ती जवानी।

टूटता-जुड़ता[13] समय 'भूगोल'[14] आया,
गोद में मणियाँ समेट खगोल[15] आया,
क्या जले बारूद[16] ? हिम के प्राण[17] पाये !
क्या मिला ? जो प्रलय के सपने[18] न आये।
धरा ? यह तरबूज है दो फाँक कर दे,

---

१. युग गान में मिलाकर। २. पराधीन मनोवृत्ति वाले को। ३. अभिमान हो। ४. वीर। ५. कुत्तों या टुकड़खोरों में। ६. शक्ति। ७. चिह्न। ८. बलिदान। ९. होड़। १०. कर्त्तव्य का ब्योरा। ११. खूँटी। १२. सजीव चिह्न। १३. काल-निर्मित। १४. विश्व-राज्य। १५. आकाश (प्रभापूर्ण)। १६. विध्वंसक भाव, उत्तेजना। १७. आन्तरिक ऊष्मा का अभाव, ठंडा मिजाज। १८. क्रान्तिकारी विचार।

चढ़ा दे स्वातन्त्र्य - प्रभु पर अमर पानी !
विश्व माने—तू जवानी है, जवानी !

लाल चेहरा है नहीं—फिर लाल[1] किस के ?
लाल खून नहीं ? अरे, कङ्काल किस के ?
प्रेरणा सोयी कि आटा-दाल[2] किस के ?
सिर न चढ़ पाया कि छापा-माल[3] किस के ?

नेह की वाणी कि हो आकाश वाणी,
धूल[4] है जो जग नहीं पायी जवानी ।

विश्व है असि का[5] ?—नहीं, सङ्कल्प का है ।
हर प्रलय[6] का कोण काया-कल्प[7] का है,
फूल गिरते; शूल शिर ऊँचा लिये हैं,
रसों के अभिमान को नीरस किये हैं !

खून हो जाये न, तेरा देख, पानी,
मरण का त्योहार[8], जीवन की जवानी !

('हिम-किरीटिनी' से)

---

१. सन्तान । २. जीविका । ३. पूजा-चिह्न । ४. निम्न । ५. तलवार (ताकत) । ६. परिवर्तन । ७. नव-निर्माण । ८. उत्सर्ग-उत्सव ।

जयशङ्कर 'प्रसाद'

[जन्म—माघ शुक्ला दशमी सं० १९४६] [मृत्यु—सं० १९९४]

प्रयाण-गीत*

(१)

हिमाद्रि तुङ्ग[१] शृङ्ग से
प्रबुद्ध - शुद्ध - भारती[२]
स्वयं प्रभा समुज्ज्वला
स्वतन्त्रता पुकारती—
अमर्त्य[३] वीर पुत्र हो, दृढ़-प्रतिज्ञ सोच लो,
प्रशस्त पुण्य-पन्थ[४] है, बढ़े चलो, बढ़े चलो।
असङ्ख्य कीर्त्ति-रश्मियाँ,[५]
विकीर्ण दिव्य दाह[६] सी,
सपूत मातृ-भूमि के!
रुको न शूर साहसी!
आराति[७] सैन्य-सिन्धु में सुवाडवाग्नि से जलो
प्रवीर हो, जयी बनो, बढ़े चलो, बढ़े चलो।

('चन्द्रगुप्त' से)

---

* ('चन्द्रगुप्त'-चतुर्थ अङ्क, षष्ठदृश्य)—अलका नागरिकों को उत्साहित कर ग्रीकों से लोहा लेने के लिए प्रेरित करती है।

१. ऊँचे। २. ज्ञान-वाणी। ३. अमर। ४. आत्मोत्सर्ग द्वारा स्वदेश रक्षा के कारण प्रशंसनीय। ५. बलिदानियों की ज्योति किरणें। ६. यज्ञाहुति ज्वाला (दिव्य तेज)। ७. शत्रु।

(२)

गीत

सुधा-सीकर[१] से नहला दो ।
लहरें[२] डूब रही हों रस[३] में,
रह न जायँ वे अपने वश में ।
रूप-राशि ! इस व्यथित हृदय-सागरको बहला दो ।
सुधा-सीकर से नहला दो ॥
अन्धकार[४] उजला[५] हो जाये,
हँसी हंस-माला[६] मँडराये,
मधु-राका[७] आगमन कलरवों[८] के मिस कहला दो ।
सुधा-सीकर से नहला दो ॥
करुणा[९] के अञ्चल पर निखरे,
घायल आँसू हैं जो बिखरे,
ये मोती[१०] बन जायँ, मृदुल कर[११] से लो सहला दो ।
सुधा-सीकर से नहला दो ॥

× × ×

[आराध्य (प्रिय) के प्रति निवेदन]—

१. अमृत कण (कृपा के) । २. आन्तरिक भाव । ३. रस-दशा, तादात्म्य। ४. अज्ञान । ५. ज्ञान-प्रकाश (आनन्द) । ६. विवेक (सदसद्-ज्ञान)। ७. आत्मानुभव की पूर्ण-ज्योति (वसन्त-पूनो का प्रकाश); प्रसन्नता । ८. मधुर वाणी (माधुर्य) । ९. (शोक या व्यथा जनित अश्रुओं को आनन्दाश्रु में परिणत करने की प्रार्थना) । १०. (आनन्दाश्रु बहुमूल्य हैं) । ११. अहैतुकी कृपा के हाथ से ।

(३)

बीती विभावरी[१] जाग री ।
अम्बर पनघट में डुबो रही—
तारा-घट ऊषा नागरी ।
खग-कुल कुल-कुल सा बोल रहा,
किसलय[२] का अञ्चल डोल रहा,
लो यह लतिका भी भर लायी
मधु मुकुल[३] नवल[४] रस-गागरी ।
अधरों में राग अमन्द पिये,
अलकों[५] में मलयज[६] बन्द किये—
तू अब तक सोई है आली !
आँखों में भरे विहाग री ॥

× × ×

(४)

अब जागो जीवन के प्रभात !
वसुधा पर ओस बने बिखरे
हिमकन आँसू[७] जो क्षोभ भरे,
ऊषा बटोरती अरुण गात !
अब जागो जीवन के प्रभात !
तम-नयनों[८] की तारायें[९] सब
मुँद रहीं[१०] किरण दल में है अब,

---

१. रात । २. ताम्रवर्ण के (नये) पत्ते । ३. मीठी कली रूपी । ४. नयी । ५. केश । ६. चन्दन (केश-संस्कार के लिए) ।

७. प्रकृति के वेदनात्मक चित्रण में ओस को क्लेश के आँसू के रूप में व्यक्त किया है । ८. रात्रि । ९. पुतलियाँ, तारे । १०. लुप्त हो रही हैं ।

चल रहा सुखद यह मलय वात[१] ।
अब जागो जीवन के प्रभात !
रजनी की लाज समेटो तो,
कलरव[२] से उठकर भेंटो तो,
अरुणाञ्चल में चल रही वात ।
अब जागो जीवन के प्रभात !

('लहर' से)

× × ×

(५)

किरण

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज, रँगी हो तुम किसके अनुराग ,
स्वर्ण-सरसिज-किञ्जल्क[३] समान, उड़ाती हो परमाणु-पराग ॥
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश, मधुर मुरली सी फिर भी मौन, –
किसी अज्ञात विश्व की विकल-वेदना-दूती सी तुम कौन ?
अरुण[४]-शिशु के मुख पर सविलास, सुनहली लट घुँघराली कान्त ।
नाचती हो जैसे तुम कौन ? उषा के अञ्चल में अश्रान्त ॥
भला उस भोले मुख को छोड़, और चूमोगी किसका भाल ,
मनोहर यह कैसा है नृत्य, कौन देता है सम पर ताल ?
कोकनद-मधु-धारा[५] सी तरल, विश्व में बहती हो किस ओर ?
प्रकृति को देती परमानन्द, उठाकर सुन्दर सरस हिलोर ॥

---

१. प्रातः कालीन दक्षिण पवन । २. खगकुल की बोली, मीठी आवाज ।

× × ×

(किरण की लाली से रहस्यमयी प्रेरणा प्राप्त कर कवि अदृश्य प्रियतम के अनुराग का उल्लेख करता है) ।

३. केसर । ४. नवोदित (लाल) बाल-रवि । ५. लाल कमल के मकरन्द ।

स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन मिलाती हो उससे भूलोक ?
जोड़ती हो कैसा सम्बन्ध, बना देगी क्या विरज विशोक[१] ?
सुदिनमणि-वलय-विभूषित[२] उषा-सुन्दरी के कर का सङ्केत।
कर रही हो तुम किसको मधुर, किसे दिखलाती प्रेम-निकेत ?
चपल, ठहरो कुछ लो विश्राम, चल चुकी हो पथ शून्य[३] अनन्त।
सुमन-मन्दिर[४] के खोलो द्वार, जगे फिर सोया वहाँ वसन्त[५] ॥
(झरना)

× × ×

(६)*

तुमुल कोलाहल कलह[६] में मैं हृदय की बात[७] रे मन !
विकल होकर नित्य चञ्चल,
खोजती जब नींद के पल;
चेतना[८] थक सी रही तब, मैं मलय की वात[९] रे मन।
चिर-विषाद-विलीन मन की,
इस व्यथा के तिमिर-वन की,
मैं उषा सी ज्योति-रेखा, कुसुम विकसित प्रात रे मन !
जहाँ मरु-ज्वाला[१०] धधकती,
चातकी[११] कन[१२] को तरसती,

---

१. कल्मषहीन तथा शोक रहित। २. सूर्य रूपी-कङ्कण-युक्त। ३. अनन्त आकाश। ४. फूलों की पंखुड़ियों के, अच्छे मन रूपी मन्दिर के। ५. वसन्त ऋतु, प्रकाश, प्रसन्नता या नव जीवन।

× × ×

* कामायनी के 'निर्वेद' सर्ग में अचेत मनु के पुनर्दर्शन के अनन्तर भावमग्न श्रद्धा का गाया आत्माभिव्यञ्जक गीत।

६. सांसारिक क्रियाओं में लीन रहने के कारण अशान्ति (क्रियायां कलहो दृष्टः)। ७. आत्मसुख, शान्ति। ८. बुद्धि। ९. हवा (शान्ति दायिनी)। १०. शुष्कजीवन। ११. आत्माभिलाषा। १२. जीवन कण, तृप्तिकरविन्दु।

उन्हीं जीवन-घाटियों की, मैं सरस बरसात रे मन !

पवन की प्राचीर[१] में रुक,
जला जीवन[२] जी रहा झुक,

इस झुलसते विश्व दिन की, मैं कुसुम-ऋतु-रात[३] रे मन !

चिर निराशा नीरधर[४] से,
प्रतिच्छायित[५] अश्रु-सर में,

मधुप मुखर[६] मरन्द-मुकुलित[७], मैं सजल जलजात[८] रे मन !

('कामायनी' से)

---

१. वातावरण। २. शोषित-जीवन। ३. वसन्त ऋतु की रात (सुहावनी)। ४. घनीभूत पीड़ा। ५. प्रतिबिम्बित। ६. मञ्जु-गुञ्जार युक्त। ७. पराग-पूरित, विकसित। ८. कमल।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

[जन्म—वसन्तपञ्चमी सं० १९५३] [मृत्यु—सं० २०२०]

वाणी-वन्दना*

(१)

वर दे, वीणावादिनि वरदे ।
प्रिय स्वतन्त्र-रव अमृत-मन्त्र नव
भारत में भर दे !
काट अन्ध-उर के बन्धन-स्तर
बहा जननि, ज्योतिर्मय निर्झर,
कलुष भेद तम हर प्रकाश भर,
जगमग जग कर दे !
नव गति, नव लय, ताल छन्द नव
नवल कण्ठ, नव-जलद-मन्द्र-रव[1]
नव नभ के नव विहग[2] वृन्द को
नव पर,[3] नव स्वर दे !

अणिमा†

(२)

दलित जन पर करो करुणा ।
दीनता पर उतर आये
प्रभु तुम्हारी शक्ति अरुणा[4] ।

---

* कवि दुःखमय जीवन में स्वतन्त्रता, अमरता, मति-कीर्ति-गति, नव-संगीत और उन्मुक्त विचरण की कामना करता है ।

१. गम्भीर ध्वनि । २. उड़ान भरने वाला (कवि) । ३. नयेपंख (पक्ष) की शक्ति ।

× × ×

† महीयान प्रभु अति लघु रूप धारण कर दलितों का उद्धार करे ।

४. नूतन, अनुरक्त, प्रकाश दायिनी ।

हरे तन मन प्रीति पावन,
मधुर हो मुख मनो भावन,
सहज चितवन[१] पर तरङ्गित
हो तुम्हारी किरण तरुणा[२] ।

देख वैभव हो न नत सिर,
समुद्धत मन सदा हो स्थिर,
पार कर जीवन निरन्तर
रहे बहती भक्ति-वरुणा[३] ।

× × ×

(३)

भाव जो छलके पदों पर
न हों हलके, न हों नश्वर ।
चित्त चिर निर्मल करे वह,
देह मन शीतल करे वह,
ताप सब मेरे हरे वह,
नहा आई जो सरोवर[४]

*गन्ध वह है, धूप मेरी
हो तुम्हारी प्रिय चितेरी
आरती की सहज फेरी
रवि, न कम कर दे[५] कहीं पर ।

---

१. स्वाभाविक दृष्टि (अकारण करुण) । २. शक्तिदायिनी ज्योति । ३. नदी । ४. भाव-सर ।

* उपचार-द्रव्य (गन्ध, धूप, आरती) । गन्ध वह (कीर्तिविस्तारक) पवन । ५. मेरी उपासना में कमी न हो ।

गीत

(४)

भर देते हो
बार बार प्रिय, करुणा की किरणों से।
क्षुब्ध हृदय को पुलकित कर देते हो।
मेरे अन्तर में आते हो, देव, निरन्तर,
कर जाते हो व्यथा-भार लघु,
बार बार कर-कञ्ज बढ़ा कर,
अन्धकार में मेरा रोदन,
सिक्त धरा के अञ्चल को
करता है क्षण-क्षण—
कुसुम-कपोलों पर वे लोल शिशिर-कण;
तुम किरणों से अश्रु पोंछ लेते हो,
नव प्रभात जीवन में भर देते हो।

भिक्षुक

(५)

वह आता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।
पेट-पीठ दोनों मिलकर हैं एक,
चल रहा लकुटिया[१] टेक,
मुट्ठी भर दाने को भूख मिटाने को,
मुँह फटी-पुरानी-झोली का फैलाता—
दो टूक कलेजे के करता पछताता पथ पर आता।

१. लाठी, सहारा।

साथ दो बच्चे भी हैं सदा हाथ फैलाये,
बाँये से मलते हुए पेट चलते हैं,
और दाहना दया-दृष्टि पाने की ओर बढ़ाये,
भूख से सूख ओंठ जब जाते,
दाता-भाग्य-विधाता से क्या पाते[१] ?
घूँट आँसुओं के पीकर रह जाते ।
चाट रहे जूठी पत्तल वे कभी सड़क पर खड़े हुए,
और झपट लेने को उनसे कुत्ते भी हैं अड़े हुए ।
ठहरो, अहा ! मेरे हृदय में है अमृत[२] मैं सींच दूँगा,
अभिमन्यु जैसे हो सको तुम ।
तुम्हारे दुःख मैं अपने हृदय में खींच लूँगा ।

---

१. कवि पाठक से प्रश्न करता है ; (उत्तर सभी जानते हैं) ।
२. दया का अमृत ।

सुमित्रानन्दन पन्त

[जन्म—सं० १९५७]

मौन-निमन्त्रण

स्तब्ध[१] ज्योत्स्ना में जब संसार
चकित रहता शिशु-सा नादान,
विश्व के पलकों पर सुकुमार
विचरते हैं जब स्वप्न अजान

न जाने, नक्षत्रों[२] से कौन
निमन्त्रण देता मुझको मौन !

सघन मेघों का भीमाकाश
गरजता है जब तमसाकार[३],
दीर्घ भरता समीर निःश्वास[४],
प्रखर झरती जब पावस-धार[५];

न जाने, तपक[६] तड़ित में कौन
मुझे इङ्गित[७] करता तब मौन !

[सृष्टि की सुन्दरता कवि-दृष्टि को मौन रूप में आकृष्ट करती है। (स्रष्टा की महत्ता पर विचार करने के लिए) कवि उस आमंत्रण को अभिव्यक्त करता है।]

१. नीरव। २. चाँदनी रात में जब सारी दुनिया सोती है तब (तारों में रात बिताकर) कवि नक्षत्र-लोक की अधिष्ठात्री शक्ति का मनन करता है। ३. अन्धकार के रूप में। ४. प्रबल वायु-प्रवाह। ५. बरसात। ६. चमक। ७. इशारा; (डरावनी) बिजली की चमक भी उस शक्ति की ओर सङ्केत करती है।

देख वसुधा का यौवन भार
गूँज उठता है जब मधुमास,
विधुर[१] उर के-से मृदु उद्गार
कुसुम[२] जब खुल पड़ते सोच्छ्वास
न जाने, सौरभ के मिस कौन
सँदेशा मुझे भेजता मौन।

क्षुब्ध-जल-शिखरों[३] को जब वात,
सिन्धु में मथकर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना, बिथुरा देती अज्ञात,
उठा तब लहरों से कर कौन
न जाने, मुझे बुलाता मौन!

स्वर्ण[४], सुख, श्री, सौरभ में भोर
विश्व को देती है जब बोर,
विहग-कुल की कल-कण्ठ हिलोर
मिला देती भू-नभ के छोर
न जाने, अलस-पलक-दल[५] कौन
खोल देता तब मेरे मौन!

तुमुल[६] तम में जब एकाकार
ऊँघता एक साथ संसार,
भीरु झींगुर-कुल की झनकार
कँपा देती तन्द्रा[७] के तार,

१. प्रिया-वियुक्त। २. मादक वसन्तश्री में (पुष्पधन्वा का) कुसुम-सौरभ। ३. तरङ्गों। ४. सुनहली (किरणों)। ५. आलस्यपूर्ण दोनों पलकें। ६. प्रगाढ़। ७. खुमारी।

न जाने, खद्योतों से कौन
मुझे पथ दिखलाता तब मौन !
कनक-छाया[1] में जबकि सकाल[2]
खोलती कलिका उर के द्वार,
सुरभि पीड़ित मधुपों के बाल
तड़प, बन जाते हैं गुंजार,
न जाने, ढुलक ओस में कौन
खींच लेता मेरे दृग मौन !
बिछा[3] कार्यों का गुरुतर भार
दिवस को दे सुवर्ण अवसान,[4]
शून्य[5] शय्या में, श्रमित अपार
जुड़ाता जब मैं आकुल प्राण,
न जाने मुझे स्वप्न में कौन
फिराता छाया-जग[6] में मौन !
न जाने कौन, अये छविमान
जान मुझको अबोध, अज्ञान,
सुझाते हो तुम पथ अनजान,
फूँक देते छिद्रों में गान[7],
अहे सुख-दुख के सहचर[8] मौन !
नहीं कह सकती तुम हो कौन !

('पल्लव' से)

---

१. सुनहली शोभा । २. सवेरे (बङ्गीय प्रयोग) । ३. वहन कर । ४. सुनहली सन्ध्या । ५. (एकान्त) आकाश । ६. कल्पनालोक, [स्वप्न के भ्रमात्मक (चल चित्रों) रूपों की दुनिया] । ७. रोमकूपों में स्वर लहरी जगा देते हो । ८. अपरिचित परमात्म-शक्ति को कवि आत्मीया कहता है । प्रकृति-प्रधान जीवन की अभिव्यक्ति है ।

तप रे

तप रे मधुर मधुर मन !
विश्व-वेदना में तप प्रतिपल,
जग-जीवन की ज्वाला में गल,
बन अकलुष, उज्ज्वल औ' कोमल
तप रे विधुर विधुर मन ।
अपने सजल स्वर्ण से पावन,
रच जीवन की मूर्ति पूर्णतम,
स्थापित कर जग में अपनापन
ढल रे ढल आतुर मन !
तेरी मधुर मुक्ति ही बन्धन
गन्धहीन तू गन्धयुक्त बन
निज अरूप में भर स्वरूप, मन ।
मूर्तिमान बन, निर्धन ।
गल रे गल निष्ठुर मन !

('गुञ्जन' से)

कुसुम-जीवन

कुसुमों के जीवन का पल
हँसता ही जग में देखा,
इन म्लान मलिन अधरों पर
स्थिर रही न स्मिति[1] की रेखा !

---

१. मुसकान ।

वन की सूनी डाली पर
सीखा कलि ने मुसकाना,
मैं सीख न पाया अब तक
सुख से दुख को अपनाना।

काँटों से कुटिल भरी हो
यह जटिल जगत की डाली,
इसमें ही तो जीवन के
पल्लव की फूटी लाली।

अपनी डाली के काँटे
बेधते नहीं अपना तन,
सोने सा उज्ज्वल बनने
तपता[१] नित प्राणों का धन।

दुख-दावा से नव अङ्कुर
पाता जग-जीवन का वन,
करुणार्द्र विश्व की गर्जन[२]।
बरसाती नव-जीवन-कण[३]!

बापू के प्रति*

तुम मांसहीन तुम रक्त-हीन,
हे अस्थि-शेष! तुम अस्थि-हीन,
तुम शुद्ध-बुद्ध आत्मा केवल
हे चिर पुराण हे चिर नवीन!

---

१. दुःखाग्नि में तपकर ही जीवन सुवर्णप्रभ (उज्ज्वल) होता है।
२. दुःखियों की भारी आवाज। ३. नया-पानी, नया-जीवन।

× × ×

* [महात्मा गांधी जी के व्यक्तित्व (चरित-सिद्धान्त) का निदर्शन।]

तुम पूर्ण इकाई जीवन की[1],
जिसमें असार भव शून्य लीन,
आधार, अमर होगी जिस पर
भावी की संस्कृति समासीन[2]।

तुम मांस, तुम्हीं हो रक्त-अस्थि—
निर्मित जिनसे नवयुग का तन,
तुम धन्य! तुम्हारा निःस्व त्याग[3]
है विश्व-भोग का वर-साधन।

इस भस्म-काम[4] तन की रज से
जग पूर्ण-काम[5] नव जग-जीवन,
बीनेगा सत्य-अहिंसा के
ताने-बानों से मानवपन!

सदियों का दैन्य-तमिस्र[6] तूल[7]
धुन तुमने, कात प्रकाश-सूत,
हे नग्न! नग्न पशुता ढँक दी
बुन नव संस्कृति मनुजत्व पूत[8],

जग पीड़ित छूतों से प्रभूत[9],
छू अमृत स्पर्श से, हे अछूत[10]!

---

१. जीवन के चरम आदर्श की। २. बैठकर, स्थिर होकर। ३. पूर्ण आत्म-त्याग। ४. काम को भस्म करनेवाले। [इन पंक्तियों में विरोध का आभास भी है।] ५. पूर्ण मनोरथ।

६. दीनता का अन्धकार। ७. रुई। ८. मानवता से पवित्र। ९. अधिक। १०. छुआछूत के भूत से रहित (गाँधी जी)। [स्पृश्यास्पृश्य की भावना ने प्राचीन संस्कृतिको विकृत कर दिया था]।

तुमने पावन कर मुक्त किये
मृत संस्कृतियों के विकृत भूत !

सुख-भोग खोजने आते सब,
आये तुम करने सत्य-खोज,
जग की मिट्टी के पुतले जन,
तुम आत्मा के, मन के मनोज[१] !

जड़ता, हिंसा, स्पर्धा में भर
चेतना, अहिंसा, नम्र-ओज,
पशुता का पङ्कज बना दिया,
तुमने मानवता का सरोज !

तुम विश्वमञ्च पर हुए उदित
बन जग - जीवन के सूत्रधार,
पट पर पट उठा दिये मन से
कर नर-चरित्र का नवोद्धार,

आत्मा को[२] विषयाधार बना
दिशि-पल[३] के दृश्यों को सँवार,
गा गा 'एकोऽहं बहु स्याम'[४]
हर लिये भेद, भव-भीति-भार[५] !

साम्राज्यवाद[६] था कंस, बन्दिनी
मानवता, पशु - बलाक्रान्त,

---

१. (स्वराज्य-विहारी)। २. आत्मा की एकता के प्रतिपादन को। ३. दिक्-काल को अनवच्छिन्न (अन्तर रहित) कर। ४. अद्वैत (भेद-निरसन) की व्यापकता सुनाकर। ५. जागतिक ताप। ६. (कारागृह में मोहनी शक्ति के अवतार और साम्राज्यवाद के अन्त का रूपक)।

शृङ्खला - दासता, प्रहरी बहु
निर्मम - शासन - पद - शक्ति-भ्रान्त,
कारागृह में दे दिव्य जन्म
मानव - आत्मा को मुक्त, कान्त,
जन - शोषण की बढ़ती यमुना
तुमने की नत - पद-प्रणत शान्त !

महादेवी वर्मा

[जन्म—सं० १९६४]

जीवन

(१)

तुहिन[1] के पुलिनों[2] पर छविमान[3],
किसी मधुदिन की लहर समान,
स्वप्न की प्रतिमा पर अनजान—
वेदना[4] का ज्यों छाया-दान;
विश्व में यह भोला जीवन—
स्वप्न जागृति का मूक मिलन,
बाँध अञ्चल में विस्मृति धन,
कर रहा किसका अन्वेषण[5] ?

धूलि के कण[6] में नभ सी चाह,
बिन्दु में[7] दुख का जलधि अथाह,
एक स्पन्दन[8] में स्वप्न अपार,
एक पल असफलता का भार;
साँस में अनुतापों[9] का दाह,
कल्पना का अविराम प्रवाह,
यही तो हैं इसके लघु-प्राण,
शाप वरदानों के सन्धान[10] !

---

१. तुषार, शीतलता। २. किनारे। ३. निर्मित। ४. अज्ञात-पीड़ा। ५. आत्मविस्मृतिपूर्ण कर्म-रत जीवन में मनुष्य को किसकी चाह है ?)। ६. लघुमानस। ७. (शोकाश्रु)। ८. (चेष्टा) हृदय की गति। ९. पछतावा। १०. लघु जीवन में सुख दुःख के मिलन (सन्धान) के चित्र।

भरे उर में छवि का[१] मधुमास,
दृगों में अश्रु[२] अधर में हास[३],
ले रहा किसका पावस प्यार[४],
विपुल लघु प्राणों में अवतार?

*नील नभ का असीम विस्तार,
अनल के धूमिल कण दो चार,
सलिल से निर्भर[५] वीचि[६]-विलास
मन्द मलयानिल से उच्छ्वास,

धरा से ले परमाणु उधार
किया किसने मानव साकार?

दृगों में सोते हैं अज्ञात,
निदाघों[७] के दिन पावस-रात,
सुधा का मधु हाला[८] का राग,
व्यथा के घन अतृप्ति की आग।

छिपे मानस में पवि-नवनीत[९],
निमिष[१०] की गति निर्झर के गीत,
अश्रु की उर्म्मि[११] हास का वात,
कुहू[१२] का तम माधव[१३] का प्रात।

---

१. सौन्दर्यानुरक्ति। २. वेदना। ३. मिलन-सुख। ४. सरस स्नेह। * [लघुमानव का स्वरूप:—उदारता, असीम आकांक्षा, (गगन); अतृप्ति, मन्द प्रकाशित ज्ञान-कण (पावक); आँसू, कल्पना तरङ्ग (जल); आनन्द, प्रोत्साहन (समीर); लघुता, सूक्ष्मता (क्षिति)] । ५. बहुत अधिक। ६. लहरों का मचलना। ७. तपन, गर्मी। ८. मदिरा। ९. वज्रकठोरता और नवनीत-सुकुमारता। १०. पलक मारने की, पल की। ११. तरङ्ग। १२. अमावास्या। १३. वसन्त।

हो गये क्या उर में वपुमान,
क्षुद्रता रज की, नभ का मान,
स्वर्ग की छवि, रौरव[1] की छाँह
शीत[2] हिम की, वाड़व[3] का दाह ?

और—यह विस्मय का संसार,
अखिल वैभव का राजकुमार,
धूलि में क्यों खिलकर नादान,
उसी में होता अन्तर्धान ?

काल के प्याले में अभिनव,
ढाल जीवन का मधु आसव,
नाश के हिम-अधरों से, मौन,
लगा देता है आकर कौन ?

बिखर कर कन कन के लघुप्राण
गुनगुनाते रहते यह तान,
"अमरता है जीवन का ह्रास[4],
मृत्यु जीवन का चरम-विकास"।

दूर है अपना लक्ष्य महान,
एक जीवन पग एक समान,
अलक्षित परिवर्तन की डोर,
खींचती हमें इष्ट की ओर।

---

१. नरक (यातना)। २. शान्ति। ३. अशान्ति। ४. जीवन का नष्ट होना।

छिपाकर उर में निकट प्रभात,
गहन तम होती पिछली रात;
सघन वारिद अन्तर से छूट
सफल होता जलकण में फूट।

स्निग्ध[1] अपना जीवन कर क्षार[2],
दीप करता आलोक-प्रसार,
गला कर मृत्पिण्डों में प्राण,
बीज करता असंख्य निर्माण।

सृष्टि[3] का है यह अमिट विधान,
एक मिटने में सौ वरदान,
नष्ट कब अणु का हुआ प्रयास,
विफलता में है पूर्ति-विकास।

(२)

मैं नीर भरी दुख की बदली!
स्पन्दन में चिर निस्पन्द[4] बसा,
क्रन्दन में आहत विश्व हँसा

---

१. स्नेहयुक्त। २. राख। [कि दाना खाक में मिलकर गुले गुलजार होता है]। ३. ("धरा को प्रमाण यहै तुलसी, जो फरै सो झरै औ बरै सो बुताना")—इसके अनुसार जीवन का परिणाम मृत्यु है। अस्तु आत्मोत्सर्ग द्वारा (अनुभूतियों का) अमर सन्देश दे। सृष्टि का प्रवाह तो चलता ही रहेगा। ४. निश्चेष्टता।

विशेष :—अनादि अनन्त प्रकृति-प्रवाह में जीवन सुख-दुख, हास-रुदन, तृप्ति-अतृप्ति, आशा-निराशा, क्षुद्रता-उदारता, सुन्दर-असुन्दर, शान्ति-अशान्ति की सम्मिलन भूमि है।

नयनों में दीपक[१] से जलते
पलकों में निर्झरिणी[२] मचली !

मेरा पग पग सङ्गीत भरा,
श्वासों से स्वप्न-पराग[३] झरा,
नभ के नव रँग बुनते दुकूल[४],
छाया में मलय बयार पली।

मैं क्षितिज भ्रृकुटि पर घिर धूमिल,
चिन्ता का भार बनी अविरल,
रज-कण पर जल-कण हो बरसी
नव जीवन अङ्कुर बन निकली !

पथ को न मलिन करता आना,
पद-चिह्न न दे जाता जाना,
सुधि मेरे आगम[५] की जग में
सुख की सिहरन[६] हो अन्त खिली !

विस्तृत नभ का कोई कोना,
मेरा न कभी अपना होना,
परिचय इतना इतिहास यही
उमड़ी कल थी मिट आज चली !

('सान्ध्य गीत' से)

× × × ×

---

१. संताप में भी आलोक। २. सजलता, जीवन की आर्द्रता। ३. (मधुर) सुरभित कल्पनाएँ। ४. (दुपट्टा) कोमलता और बारीकी। ५. जन्म। ६. अल्पकालिक भावोदय।

(३)*

क्या पूजा क्या अर्चन रे ?
उस असीम का सुन्दर मन्दिर मेरा लघुतम जीवन रे।
मेरी श्वासें करती रहतीं नित प्रिय का अभिनन्दन रे!
पद-रज को धोने उमड़े आते लोचन से जल-कण रे!
अक्षत पुलकित रोम, मधुर मेरी पीड़ा का चन्दन रे!
स्नेह भरा जलता है झिलमिल मेरा यह दीपक मन रे!
मेरे दृग के तारक में नव उत्पल का उन्मीलन रे!
धूप बने उड़ते रहते हैं प्रतिपल मेरे स्पन्दन रे!
प्रिय-प्रिय जपते अधर ताल देता पलकों का नर्तन रे!

('नीरजा' से)

---

* [दुःख-सुख को एकाकार करनेवाली लोकोत्तर अनुभूति का प्रकाशन इस अंश में है। रूपक स्पष्ट हैं।]

रामधारी सिंह 'दिनकर'

[जन्म सं० १९६५]

(१)

किसको नमन करूँ मैं ?

तुझको या तेरे नदीश, गिरि, वन को नमन करूँ मैं ?
मेरे प्यारे देश ! देह या मन को नमन करूँ मैं ?
किसको नमन करूँ मैं भारत ! किसको नमन करूँ मैं ?

भू के मानचित्र पर अङ्कित त्रिभुज[1], यही क्या तू है ?
नर के नभश्चरण[2] की दृढ़ कल्पना नहीं क्या तू है ?
भेदों[3] का ज्ञाता, निगूढ़ताओं[4] का चिर ज्ञानी है;
मेरे प्यारे देश ! नहीं तू पत्थर है, पानी है।
जड़ताओं में छिपे किसी चेतन को नमन करूँ मैं ?
किसको नमन करूँ मैं भारत ! किसको नमन करूँ मैं ?

तू वह, नर ने जिसे बहुत ऊँचा चढ़कर पाया था;
तू वह, जो सन्देश भूमि को अम्बर[5] से आया था।
तू वह, जिसका ध्यान आज भी मन सुरभित करता है;
थकी हुई आत्मा में उड़ने की उमङ्ग भरता है।

इसमें मानवता के अग्रदूत भारत के प्रति कवि की पूज्य-बुद्धि की अभिव्यक्ति है। विश्व में भारत की श्रेष्ठता उसके दार्शनिक या आध्यात्मिक चिन्तन और शील के कारण है।

१. त्रिभुजाकार भारत का मानचित्र। २. उन्नत गति। ३. सृष्टि के सत्यासत्य के भेद। ४. रहस्य। ५. (आकाश) दिव्य विचारों का वाहक।

गन्ध-निकेतन[1] इस अदृश्य उपवन को नमन करूँ मैं ?
किसको नमन करूँ मैं भारत ! किसको नमन करूँ मैं ?

वहाँ नहीं तू जहाँ जनों से ही मनुजों को भय है;
सबको सबसे त्रास सदा सब पर सबका संशय है।
जहाँ स्नेह के सहज स्रोत से हटे हुए जनगण हैं,
झंडों या नारों के नीचे बँटे हुए जनगण हैं।
कैसे इस कुत्सित, विभक्त जीवन को नमन करूँ मैं ?
किसको नमन करूँ मैं भारत ! किसको नमन करूँ मैं ?

तू तो है वह लोक जहाँ उन्मुक्त मनुज का मन है;
समरसता[2] को लिए प्रवाहित शीत-स्निग्ध जीवन है।
जहाँ पहुँच मानते नहीं नर-नारी दिग्बन्धन[3] को;
आत्म-रूप देखते प्रेम में भरकर निखिल भुवन को।
कहीं खोज इस रुचिर स्वप्न पावन को नमन करूँ मैं ?
किसको नमन करूँ मैं भारत ! किसको नमन करूँ मैं ?

भारत नहीं स्थान का वाचक, गुण-विशेष नर का है,
एक देश का नहीं, शील यह भूमण्डल भर का है।
जहाँ कहीं एकता अखण्डित जहाँ प्रेम का स्वर है;
देश देश में वहाँ खड़ा भारत जीवित भास्वर[4] है।
निखिल विश्व की जन्मभूमि-वन्दन को नमन करूँ मैं।
किसको नमन करूँ मैं भारत ! किसको नमन करूँ मैं ?

खण्डित है यह मही शैल से, सरिता से, सागर से ;
पर, जब भी दो हाथ निकल मिलते आ द्वीपान्तर[5] से ;
तब खाई को पाट शून्य में महा मोद मचता है ;
दो द्वीपों के बीच सेतु[6] यह भारत ही रचता है।

---

१. सौमनस्य का आवास। २. इच्छा ज्ञान और क्रिया की। ३. देश की सीमा। ४. प्रकाशित, दीप्तिमान। ५. दूसरे द्वीप से। ६. मेल करानेवाला।

मङ्गलमय इस महासेतु - बन्धन को नमन करूँ मैं।
किसको नमन करूँ मैं भारत ! किसको नमन करूँ मैं ?

दो हृदयों के तार जहाँ भी जो जन जोड़ रहे हैं;
मित्र - भाव की ओर विश्व की गति को मोड़ रहे हैं।
घोल रहे हैं जो जीवन - सरिता में प्रेम - रसायन,
खोल रहे हैं देश - देश के बीच मुँदे वातायन[१]।

आत्म - बन्धु कह कर ऐसे जन-जन को नमन करूँ मैं।
किसको नमन करूँ मैं भारत ! किसको नमन करूँ मैं ?

उठे जहाँ भी घोष शान्ति का, भारत ! स्वर तेरा है,
धर्म - दीप हो जिसके भी कर में वह नर तेरा है।
तेरा है वह वीर, सत्य पर जो अड़ने जाता है,
किसी न्याय के लिए प्राण अर्पित करने जाता है।

मानवता के इस ललाट - चन्दन को नमन करूँ मैं।
किसको नमन करूँ मैं भारत ! किसको नमन करूँ मैं।

('नील कुसुम')

जीवन

पत्थरों में भी कहीं कुछ सुगबुगी है ?
दूब यह चट्टान पर कैसे उगी है ?
ध्वंस पर जैसे मरण की दृष्टि है,
सृजन में त्योंही लगी यह सृष्टि है।
एक कण भी है सजल आशा जहाँ,
एक अङ्कुर सिर उठाता है वहाँ।

---

१. जंगले, झरोखे।

मृत्यु का तन आग है, अङ्गार है;
जिन्दगी हरियालियों की धार है।
क्षार में दो बूँद आँसू डालकर,
और उसमें बीज कोई पालकर,
चूम कर मृत को जिलाती जिन्दगी।
फूल मरघट में खिलाती जिन्दगी।
निर्झरी बन फूटती पाताल से,
कोपलें बन नम्र, रूखी डाल से।
खोज लेती है सुधा पाषाण में,
जिन्दगी रुकती नहीं चट्टान में।
बाल भर अवकाश होना चाहिए,
कुछ खुला आकाश होना चाहिए,
बीज की फिर शक्ति रुकती है कहाँ?
भाव की अभिव्यक्ति रुकती है कहाँ?

('नील कुसुम')

वृत्त-वित्त

चन्दबरदाई

हिन्दी के प्रथम महाकवि, जगात गोत्रीय चन्दबरदाई भट्ट जाति के (विरुदिया = यशोगायक) थे। दिल्ली के अन्तिम हिन्दू सम्राट् ('रासो' के कथा-नायक) महाराज पृथ्वीराज के सहचर, सामन्त, प्रशस्तिपाठी इस राजकवि का जन्म लाहौर में हुआ था। सरस्वती-कृपा-प्राप्त, अनेक विद्या-विद् 'चन्द' में देवी-सिद्धि से अदृष्टवर्णन की क्षमता थी।

विक्रम सं० १२४८ में पृथ्वीराज और शहाबुद्दीन गोरी का प्रथम युद्ध हुआ था। अस्तु चन्दरबरदाई का समय भी इसी आधार पर विक्रम की बारहवीं शती का उत्तरार्ध माना गया है। शहाबुद्दीन ने अन्तिम युद्ध में जब पृथ्वीराज को कैद कर लिया और उनको गजनी ले गया तब 'चन्द' भी वहाँ पहुँचे। नृप-कार्य से गजनी जाते समय 'चन्द' ने 'रासो' की अपूर्ण प्रति अपने पुत्र जल्हण के हाथों सौंपी और उसे पूर्ण करने को कहा। जल्हण ने अन्तिम अंश का निर्माण कर उसे पूरा किया।

'चन्द' का 'पृथ्वीराज रासो' हिन्दी का प्रथम महाकाव्य कहा गया है। प्रचलित रासो में अनेकों की कृति समाविष्ट है। इस पर लिखे शोध-निबन्धों का सारांश यही है कि इसकी प्रामाणिकता सन्दिग्ध है; अथ च 'चन्द' पृथ्वीराज का परवर्ती है। अनुश्रुतियों के बल पर ही कवि और काव्य की प्राचीनता सिद्ध की गयी है।

विद्यापति

अभिनव-जयदेव, कविशेखर, कविकण्ठहार, कविरञ्जन, कविराज, सुकवि आदि अनेक-उपाधि-विभूषित मैथिल-कोकिल विद्यापति का जन्म दरभंगा जिले के विसपी ग्राम में हुआ था। जन्मकाल के विषय में प्रामाणिक सामग्री का अभाव रहते हुए भी विद्वानों ने इनका जन्म सं० १४२७ के आसपास माना है।

इन्होंने संस्कृत, अवहट्ठ (अपभ्रष्ट = अपभ्रंश) और देश-भाषा मैथिली में काव्य-रचना की है। उस काल की प्रचलित मैथिली भाषा में अपूर्व-पद-रचना करने के कारण ये 'मैथिल-कोकिल' कहलाये और जयदेव के देववाणी के गीतों की सी मिठास लाने के कारण 'अभिनव जयदेव'। कविराज विद्यापति की 'भणिति' या पदों में राजा शिवसिंह और उनकी पटरानी 'लखिमा देई' (देवी) का उल्लेख अनेक बार हुआ है। कीर्त्तिसिंह (सं० १४६०) के राज्यकाल में लिखी 'कीर्त्तिलता' पुस्तक राज-प्रशस्ति-काव्य है।

शाक्त प्रदेश के द्वार-बंग (दरभंगा) के इस शिवोपासक रीतिमुक्त शृङ्गारी जनकवि की रचनावली अधोलिखित है :—

संस्कृत :—दुर्गा-भक्ति-तरङ्गिणी, शैव-सर्वस्व-सार, गङ्गा वाक्यावली, लिखनावली, दान-वाक्यावली, भू-परिक्रमा, विभाग-सार, पुरुष-परीक्षा, गया पत्तलक, वर्षकृत्य।

अपभ्रंश—कीर्त्तिलता, कीर्तिपताका।

मैथिली—पदावली।

संवत् १५१७ के समीप इनका मरण हुआ।

कबीर

(जुगी) जुलाहे के वंश में पालित काशी के 'निर्गुनिया' कबीर के आविर्भाव के सम्बन्ध में अनेक प्रवाद प्रचलित हैं। किंवदन्तियों पर आधृत इनका वृत्त वस्तुतः रहस्यमय है। 'कबीर-चरित्र-बोध' के अनुसार जन्म-काल जेठ सुदी पूर्णिमा सोमवार सं० १४५५ माना गया है। इस प्रकार ये विद्यापति के सम-सामयिक कहे जा सकते हैं।

कबीर को कट्टर मुसलमान सिकन्दर लोदी के अत्याचारों को भी सहना पड़ा था। उसने सं० १५५१ में पूर्वी प्रदेशों पर आक्रमण किया था। जनश्रुति के आधार पर यह कल्पना की गयी है कि सं० १५७५ में कबीर

मगहर-गमन किया और वहीं इनका तिरोभाव हुआ। इस प्रकार करीब-करीब १२० वर्षों की आयु का इन्होंने भोग किया।

ये स्वामी रामानन्द के (चेताये) शिष्य थे तथा हठयोगियों, फकीरों, वैष्णव सन्तों, साधुओं और संन्यासियों के सङ्ग में भी रमे थे। मन को रंगाने वाले स्वानुभवी कबीर ने निर्द्वन्द्व भाव से निराकार की उपासना के लिए जो सीख दी, शब्द कहे या उपखान किया उनका संग्रह 'बीजक' के नाम से प्रसिद्ध है। इस 'रमते जोगी' की चुटीली बानी में पंजाबी, राजस्थानी, ब्रजी और पूर्वी जनभाषा का मेल है, पर आग्रह पूर्वी का ही है। इनके 'पंथ' में हिन्दू-मुसलमान दोनों हैं।

सूरदास

साम्प्रदायिक अनुश्रुति के अनुसार परम-भागवत सूरदास का जन्म-काल वैशाख शुक्ल ५ संवत् १५३५ माना जाता है। इनकी जाति, जन्मान्धता, जन्मस्थान के विषय में बहुत विवाद है, पर इतना बहु-जन-सम्मत है कि आगरा और मथुरा के बीच 'गऊ घाट' पर श्री वल्लभाचार्य से इनका सम्पर्क हुआ। तदनन्तर गोकुल में गोसाईं विट्ठल नाथ का यथेष्ट सत्सङ्ग हुआ। आचार्य के संसर्ग से सूर ने प्रेमा-भक्ति की सिद्धि प्राप्त की। गोवर्धन पर श्रीनाथजी के मन्दिर में उन्हीं के द्वारा नियुक्त होकर आजन्म रहे।

गुरु-कृपा के पीयूष-पाक से उद्भूत सारस्वत-वैभव वाले 'सूर' की कीर्त्ति-विस्तारक प्रामाणिक-रचना 'सूर-सागर' है। 'सागर' समाप्ति के बाद अनु-क्रमणिका रूप में लिखी 'सूर-सारावली' है। इसमें इन्होंने अपनी तात्कालिक अवस्था सरसठ (६७) वर्ष की कही है। विनोदी सूर की तीसरी कृति 'साहित्य-लहरी' मानी गयी है। 'लहरी'-क्रीड़ा में नायिका-भेद और अलङ्कारों के उदाहरणके कूट-पद हैं।

इति-वृत्त की छानबीन करने वालों ने ब्रजभाषा-भट्ट 'सूर' का गोलोकवास सं० १६४० के आसपास अनुमित किया है। कहा जाता है कि शाहंशाह अकबर और गोस्वामी तुलसीदास से भी इनका मिलन हुआ था।

मलिक मुहम्मद जायसी

हिन्दी के प्रसिद्ध सूफी कवि जायसी उत्तर-प्रदेश के रायबरेली जिले के पास 'जायस' नगर में आ बसे थे। इनके पूर्व-पुरुष ईरानी थे। बाएँ कान के बहरे एकाक्ष जायसी कुरूप थे। एक बार शेरशाह (सं० १५९७–१६०२) इनके रूप को देखकर हँसा था। इस पर जायसी ने कहा कि :—"मोहिका (मटियहि) हँसेसि कि कोहरहि ?" शेरशाह इस उक्ति से लज्जित हुआ और उसने क्षमा माँगी। कुछ लोग इस घटना का योग अकबर बादशाह से (सं० १६१३–१६६२) बताते हैं।

सैयद अशरफ जहाँगीर के घराने के मुरीद (चेला) जायसी ने महदी शेख बुरहान (सं० १५२२–१६२०) से भी ज्ञान प्राप्त किया था। इस प्रकार ये अपने समय के सिद्ध फकीर थे। फकीर के रूप में अमेठी राज (जिला लखनऊ) में प्रतिष्ठा पाना भी प्रसिद्ध है। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में ये अमेठी के निकट घने जंगल में साधना किया करते थे। किसी ने शेर के धोखे में इन्हें गोली मार दी। इस प्रकार इनका इन्तकाल हुआ।

अवधी के इस उदारमना प्रेममार्गी सूफी कवि की बाईस रचनाएँ बतायी जाती हैं। उनमें छह के (पद्मावत, अखरावट आखिरी कलाम, महरी बाईसी, चित्रावत, मोस्ती नामा) विषय में विशेष रूप से ज्ञात है। अपने कीर्त्तिस्तम्भ 'पदमावत' को इन्होंने सं० १५९७ में पूरा किया था। "आखिरी कलाम" (सं० १५८५) नामक रचना में मुगल बादशाह बाबर (सं० १५८३–८७) का उल्लेख है।

तिथि-विषयक इतनी सामग्रियों के रहते हुए भी जायसी का जन्म-वृत्तान्त अनिश्चित ही रह जाता है। फिर भी सं० १५४९ से सं० १६२० के बीच इनका रहना आँका गया है।

गोस्वामी तुलसीदास

गो० तुलसीदास के जन्म के विषय में 'इदमित्थं' नहीं कहा जा सकता। विभिन्न जन्म-तिथियों में भाद्रपद शुक्ला ११ भौमवार (सं० १५८९) ही सर्वाधिक प्रचलित है। इनकी निधन-तिथि के विषय में भी दो मत हैं। लोक-पक्ष 'श्रावण शुक्ला सप्तमी' (सं० १६८०) को मानता है और टोडरवंशी 'श्रावण श्यामा तीज' (श्रा० कृ० ३) को वर्षी-कृत्य करते हैं। इतना अवश्य है कि दोनों 'अस्सी' (संवत् सोलह सै असी, असी गंग के तीर) में ही इनका साकेत-वास मानते हैं। इस प्रकरण में एक बात अवश्य विचारणीय है। स्मार्तवैष्णव की श्राद्ध तिथि पर विजातीय द्वारा अन्न-दान (सीधा देने) की परम्परा गुरुभक्ति-प्रदर्शन मात्र है अथवा किसी 'शब्द-प्रमाण' का अनुधावन है? मेरी समझ से चँवर डुलाने वाले टोडर की भक्ति ही धर्म-वचन है। श्राद्ध का सम्बन्ध श्रद्धा से है।

गोस्वामी जी के जन्मस्थान का विवाद भी पूरा चला। राजापुर (जिला बाँदा) और सोरों (जिला एटा) में प्रथम पक्ष ही प्रबल जान पड़ता है। राजापुर को इनकी 'जन्मभूमि' और सोरों को 'आश्रय-स्थल' मान लेने पर समन्वय हो जाता है। दूसरी भूमि (सूकर खेत) पर ही सुकुल-जात (द्विज) अनाथ तुलसी गुरु ('नर रूप हरि') के सहारे सचेत हुए।

लोक-प्रसिद्ध है कि तुलसी की विरक्ति तथा राम-भक्ति के मूल में इनकी पत्नी का वचन था, हनुमद्दर्शन का सहायक प्रेत था और राम-रसायन-दाता थे हनुमान्। इन किंवदन्तियों से इतना ही मतलब है कि महात्मा पुरुषों का चरित असाधारण या अलोक-सामान्य होता है।

रामभक्त तुलसी को चित्रकूट (साधनास्थल) प्रिय था और अयोध्या में इन्होंने रामचरित-मानस का आरम्भ किया था। अपने जीवन के पश्चिम-वय में ये पूर्व (पूरब) चले आये और ज्ञान-खनि काशीपुरी में इनका गङ्गा-लाभ हुआ। 'तुलसी घाट' के नाम से प्रसिद्ध इनके आवास में आज भी स्मृति-चिह्न सुरक्षित हैं। उत्तरापथ को राममय करनेवाले तुलसीदास का स्थापित, विख्यात 'सङ्कट मोचन' मन्दिर उक्त आवास के अधिकारियों के संरक्षण में है।

गोस्वामी जी ने अपनी रचनाओं का विवरण नहीं दिया है। यों तो ३९ रचनाएँ इनके नाम से जोड़ी गयी हैं पर तेरह कृतियाँ ही असन्दिग्ध रूप से इनकी कही जा सकती हैं। वे ये हैं :—

(१) रामचरित मानस (२) रामलला नहछू (३) रामाज्ञाप्रश्न (४) जानकी मङ्गल (५) पार्वती मङ्गल (६) गीतावली (८) कृष्ण गीतावली (८) विनय पत्रिका (९) बरवै रामायण (१०) दोहावली (११) कविता-वली (१२) हनुमान-बाहुक (१३) वैराग्य सन्दीपिनी।

मीराँबाई

मीराँबाई का प्रामाणिक जीवन-वृत्त अभी तक ज्ञात नहीं हो सका है; फिर भी अनेक विद्वानों ने इनका प्राकट्य सं० १५५५ में माना है। अकबर और तानसेन के मीराँ से मिलने की किवदन्ती मान लेने पर सं० १६१९ तक इनका जीवित रहना सिद्ध हो जाता है।

राजस्थानी मीराँ राठौर रतनसिंह की पुत्री थीं। इनके पितामह मेड़ते के राव दूदा जी थे और प्रपितामह राव जोधा जी (जोधपुर के बसानेवाले) थे। इनका विवाह मेवाड़ के प्रसिद्ध महाराणा साँगा के कुँवर भोजराज से हुआ था।

मीराँ का जीवन दुःखमय था। बालपन में माता का देहान्त हो गया। देख-रेख करनेवावे पितामह दूदा जी जाते रहे। पिता को वीर-गति प्राप्त हुई

और विवाह के कुछ ही वर्षों बाद जीवन-सङ्गी पति भी चल बसे। दुःख परम्परा में पड़ी मीराँ फलतः जागतिक जीवन से निराश हो गयीं और वैष्णव संस्कार के जग जाने के कारण इनकी आसक्ति 'गिरधर गोपाल' में हो गयी। भक्त-सन्त-समादर में दिन काटनेवाली मीराँ को राणा (विक्रमादित्य) ने अनेक यातनाएँ दीं पर इनकी भगवन्निष्ठा कम नहीं हुई। सब कुछ सहकर मेवाड़ से मेड़ता आ गयीं। दुर्दैव ने यहाँ भी पीछा नहीं छोड़ा और जोधपुर के राव मालवदेव द्वारा मेड़ता छीन लिये जाने पर इन्होंने सर्वस्व त्याग दिया। भाई, बन्धु, सगे, सम्बन्धियों को छोड़कर वृन्दावन में प्रभु के ध्यान में लग गयीं।

एकाकिनी मीराँ को घट-घट-व्यापक, भवसागर को पार कराने वाले भगवान् का आश्रय प्राप्त हुआ और इनकी सहज-भक्ति-भावना में नाना भक्ति-सम्प्रदायों का आलोक मिला। मधुर भाव से इन्होंने योगियों सन्तों और वैष्णव भक्तों को अपना लिया। उत्तरापथ में मीराँ की प्रसिद्धि का आधार इनकी गेय पदावली है। पदों की भाषा में राजस्थानी, ब्रजी, गुजराती, पंजाबी, खड़ी और पूरबी का मेल है। लोक-ख्यात भक्तों की उक्तियों में इस प्रकार का मिश्रण स्वाभाविक है।

रहीम

अकबर के संरक्षक बैरम खाँ के पुत्र रहीम का जन्म सं० १६१३ में हुआ था और सत्तर वर्ष की उम्र में (सं. १६८३) इनकी मृत्यु हुई। बचपन में ही पिता के मर जाने पर इनका पालन-पोषण अकबर की देखरेख में हुआ। पत्नी, तीन पुत्रों, दामाद और आश्रयदाता की मृत्यु का कष्ट शान्त भाव से इन्होंने अपने जीवन में सहा।

गुणग्राही अकबर के शासन काल में इनकी पदोन्नति निरन्तर होती रही और 'सूबेदार', 'मीर अर्ज' 'वकील' तथा 'खानखाना' आदि पदवियाँ इन्हें प्राप्त

हुई। कवियों के आश्रयदाता सहृदय-दरबारी-हिन्दी-कवि अब्दुर्रहीम खाँ खान-खाना अरबी, तुर्की, फारसी, संस्कृत और हिन्दी के ज्ञाता थे। ये ज्योतिष के भी जानकार थे।

इनकी ग्यारह रचनाएँ प्रसिद्ध हैं तथा शृंगार, नीति और भक्ति इनके काव्य के विषय हैं। व्रजभाषा और अवधी पर समान अधिकार रखनेवाले रहीम की मार्मिक उक्तियाँ लोक-प्रसिद्ध हैं। बरवै, दोहा, सोरठा, कवित्त, सवैया आदि छन्दों का प्रयोग इन्होंने किया है। ख्यात है कि गो० तुलसीदास को 'बरवै रामायण' लिखने की प्रेरणा रहीम से प्राप्त हुई थी। रहीम की रचनाओं में हिन्दू संस्कृति और संस्कृत का पूर्ण प्रभाव लक्षित होता है।

केशव दास

भारद्वाज केशव मिश्र का जन्म तुङ्गारण्य के पास बेतवा नदी के तट पर स्थित ओरछा नगर में सं० १६१८ के चैत्र मास में माना जाता है। पुराण-वृत्ति वाले वंश में उत्पन्न इस महाकवि को ओरछा नरेश महाराज इन्द्र जीत सिंह ने इक्कीस गाँव दिये थे। उदयपुर के राणा अमर सिंह के सुपरिचित ये आचार्य तत्कालीन सम्राट् अकबर के सम्पर्क में भी आये थे। बीरबल, टोडरमल और गो० तुलसीदास से भी इनका 'परस्पर' था। कहा जाता है कि गोस्वामी जी ने इन्हें प्रेत-योनि से मुक्त किया है।

सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न, 'कठिन काव्य के प्रेत' केशवदास की प्रामाणिक रचनाएँ—रसिकप्रिया, कवि-प्रिया, रामचन्द्रिका, वीर-चरित्र, विज्ञान गीता, जहाँगीर-जस-चन्द्रिका, रतन बावनी और छन्दमाला हैं। इन्होंने लक्षण ग्रन्थों के साथ साथ लक्ष्य ग्रन्थों को भी रचा था।

अपने श्वेत केशों को कोसनेवाले इस रसिक-शिरोमणि ने निम्बार्क सम्प्रदाय में दीक्षा ग्रहण की थी। हिन्दी के प्रथम आचार्य, महाकवि तथा इतिहासकार के रूप में चमकनेवाला यह बुन्देलखण्डी तेज सं० १६८० के आसपास दिवङ्गत हो गया।

रसखान

रसखान मुसलमान थे पर इन पर कृष्ण-भक्ति का गहरा रंग चढ़ गया था। इन्होंने अपने को शाही खान्दान ('बादसा बंस') का कहा है। अधिकांश आलोचक इन्हें वल्लभ-सम्प्रदाय में दीक्षित मानते हैं।

किंवदन्ती है कि प्रारम्भ में रसखान इश्के-मजाजी (लौकिक-प्रेम) के दीवाने थे पर बाद में कृष्ण-भक्ति में तन्मय हो गये। सरल सरस ब्रजभाषा में लिखी इनकी तीन रचनाएँ प्रकाश में आ चुकी हैं। वे हैं—१ प्रेम-वाटिका, २ सुजान-रसखान ३ राग रत्नाकर।

इनके सम्बन्ध में एक दूसरी किंवदन्ती है कि मानिनी प्रेमिका से बारबार तिरस्कृत होते रहने पर इन्होंने कृष्ण से लौ लगायी और दिल्ली छोड़कर गोकुल की शरण ली। भागवत रस पीनेवाले इस भावुक कवि का जन्म सं० १६१५ और अन्त सं० १६८५ के लगभग माना जाता है।

सेनापति

रामभक्त सेनापति के जीवन से सम्बद्ध वृत्तान्त अत्यल्प ज्ञात है। इनकी प्रौढ़ कृति 'कवित्त रत्नाकर' के आधार पर इनका रचनाकाल भक्ति और रीति का सन्धि-स्थल माना गया है। उक्त कृति से ही कुल-क्रम का भी निर्धारण किया गया है। अनुमानतः सं० १६४१ इनका जन्म-समय है। आयु ६०–६५ वर्ष की मानी गयी है। जनश्रुति के आधार पर कवि का निवासस्थान अनूपशहर (जिला बुलन्दशहर) कहा गया है।

सेनापति के पिता का नाम गङ्गाधर था तथा उन्होंने गङ्गा तट पर किसी से आवास-भूमि प्राप्त की थी। इस स्वाभिमानी कवि ने वृन्दावन में क्षेत्र-संन्यास लिया था। ब्रजभाषा पर इनका अपूर्व अधिकार था तथा स्फुट छन्दों के इनके संङ्ग्रह-ग्रन्थ में भक्ति, वैराग्य, शृङ्गार रीति और ऋतु सम्बन्धी रचनाएँ हैं। राम-चरित का विस्तार भी उक्त ग्रन्थ में है।

बिहारीलाल

बिहारी का जन्म सं० १६५२ में तथा परलोकवास सं० १७२० के आस-पास हुआ था। इनके पिता का नाम केशव राय था। इनके जन्म के सात आठ वर्ष बाद केशव राय ओरछा चले गये। वहीं बिहारी ने आचार्य केशवदास से संस्कृत प्राकृत और काव्य-शिक्षा का अभ्यास किया। आगरा में अब्दुर्रहीम खानखाना से उर्दू-फारसी का अध्ययन किया। इनके एक भाई और एक बहन थी। इनका विवाह माथुर ब्राह्मण कन्या से हुआ था। ये निस्सन्तान थे।

रीतिमुक्त राजकवि बिहारी की अनेक रियासतों से वृत्ति प्राप्त होती थीं। अपनी रसमयी रचनाओं से महाराज जय सिंह (जयपुराधिपति) तथा राज-महिषी अनन्त कुमारी को इन्होंने विशेष प्रभावित किया था। जयपुर के राज कुमार राम सिंह का विद्यारम्भ इन्हींने कराया था। शाहंशाह शाहजहाँ भी इनकी कद्र करता था।

सप्तशती की परम्परा में दोहे और सोरठे में रची इनकी प्रसिद्ध शृङ्गार-प्रधान-कृति 'सतसैया' है। समास-पद्धति या चुश्त ढंग की इस रचना के विषय में यह क्षेपक लोक-प्रसिद्ध है:—

सतसैया के दोहरा ज्यों नावक के तीर।
देखत अति छोटे लगैं घाव करैं गंभीर॥

शुद्ध ब्रजी के इस काव्य ग्रन्थ का सम्मान और प्रचार साहित्य-जगत् में खूब हुआ।

—

भूषण

भूषण कश्यप गोत्र के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। ये कानपुर जिले की घाटमपुर तहसील में यमुना के तट पर स्थित तिकवाँपुर (त्रिविक्रमपुर) के रहनेवाले रत्नाकर त्रिपाठी के पुत्र थे। इनका जन्म सं० १६७० में हुआ था। भूषण के

जन्मकाल, नाम, भ्रातृत्व और आश्रयदाता के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत मत-भेद है। अनेक विद्वानों ने भूषण और छत्रपति शिवाजी (सं० १६८४— सं० १७३७) को समसामयिक माना है। इनकी कृति 'शिवराज–भूषण' का रचना-काल ज्येष्ठ कृष्णा त्रयोदशी रविवार सं० १७३० है। इससे शिवाजीका इनका आश्रयदाता होना सिद्ध हो जाता है।

भूषण-कृत छह ग्रन्थों का उल्लेख मिलता है, पर तीन ग्रन्थ ही अब तक उपलब्ध हैं। वे ये हैं:—१–शिवराज भूषण, २–शिवाबावनी ३–छत्रशाल दशक। ब्रज-भाषा में रचे इन ग्रन्थों में अरबी, फारसी और तुर्की शब्दों का भी प्रयोग हैं। मुक्तक पद्धति में वीरकाव्य लिखनेवाले रीतिकार भूषण शतायु थे।

देव

देव का जन्मकाल सं० १७३० है। इनका पूरा नाम देवदत्त था। देव की वंश-परम्परा के लोग कान्यकुब्ज 'दुबे' हैं। इटावा से ३० मील दूर 'कुसमरा' (मैनपुरी) नामक स्थान में देव के वंशज रहते हैं।

देव के आश्रय-दाता हिन्दू-मुसलमान दोनों थे। राजा रईसों के सम्पर्क में रहने वाले इस महाकवि का प्रारम्भिक जीवन विलासमय था। जीवन के विरागमय अन्तिम दिनों में ये पिहानी के अकबर अली खाँ के आश्रय में रहे। देव की कृतियों में इनके आश्रय-दाताओं का उल्लेख है। औरङ्गजेब के पुत्र आजमशाह के आश्रय के अनन्तर ये भवानीदत्त वैश्य, राजा कुशलसिंह (कानपुर के निकट 'फफूँद' नगर के), भूप भोगी लाल, उद्योत सिंह, सुजान सिंह, सुजान मणि (दिल्ली के रईस) और हिमायतुल्ला खाँ के आश्रित रहे।

शृङ्गार के रसराजत्व के प्रतिपादक देव के ग्रन्थों की संख्या ७२ बतायी जाती है पर शोध के आधार पर निम्नलिखित तेरह ग्रन्थ ही प्रामाणिक ठहराये गये हैं :—

१. भवानी-विलास, २. रस-विलास, ३. काव्य-रसायन, ४. भाव-विलास, ५. सुजान-विनोद, ६. कुशल-विलास ७. सुमिल विनोद ८. प्रेम-चन्द्रिका, ९. सुख-सागर-तरङ्ग १०. देव-चरित्र, ११. देव-माया-प्रपञ्च (नाटक) १२. देव-शतक १३. अष्टयाम ।

इस प्रसिद्ध महाकवि के अतिरिक्त, 'देव' या 'देवदत्त' नाम के सात कवि हुए हैं। उन सातों के काल और रचनाओं के विषय में पूरी छान-बीन नहीं हुई है। सम्भव है कि नवीन शोधों से 'देव' की स्थिति अधिक स्पष्ट हो जाय।

घनानन्द

हिन्दी में आनन्द, आनन्द-घन, घन-आनन्द और घनानन्द के नाम से अनेक रचनाएँ चलती हैं। विक्रम की अट्ठारहवीं और उन्नीसवीं शती में वर्तमान घनानन्द के जीवन-चरित्र का ठीक ठीक पता कहीं भी नहीं मिलता। किंवदन्तियों के आधार पर इन्हें वेश्यासक्त, निम्बार्कमतानुयायी और सखी भाव का उपासक आदि कहा गया है। इनकी जन्मभूमि जिला बुलन्द-शहर है। जन्म-मरण के सम्बन्ध में अनिश्चितता रहते हुए भी जन्म सं० १७३०-में और मृत्यु सं० १८१७ में (मथुरा में) मानी जाती है।

घनानन्द की मुक्तक और प्रबन्ध रचनाओं में 'सुजान' का बहुशः उल्लेख हैं। कहा जाता हैं कि मुहम्मद शाह के दरबार की नर्तकी 'सुजान' में ही घनानन्द ने भगवान् के नाना रूपों के दर्शन किये थे।

उक्त चारों नामों को पहले एक ही माना जाता रहा पर अब इनकी भिन्नता स्पष्ट हो गयी है। कवित्त, सवैयों और पदों में रचित छत्तीस पुस्तकों का सङ्ग्रह, 'घनानन्द ग्रन्थावली' के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

पद्माकर

बाँदा निवासी मोहन भट्ट के पुत्र पद्माकर भट्ट तैलङ्ग ब्राह्मण थे। ये मथुरा के वैष्णव हो गये थे। इनका जन्म सं० १८१० में और मृत्यु सं० १८९० में हुई। कवीश्वर-वंशोत्पन्न पद्माकर अनेक राजदरबारों में रहे। नागपुर, दत्रा, जयपुर, सुगरा, उदयपुर, ग्वालियर, बूँदी और सितारे के राजा-महाराजाओं ने इन्हें पुरस्कृत और सम्मानित किया। वैभवशाली पञ्चदेवोपासक पद्माकर के दश ग्रन्थ उपलब्ध हुए हैं। भट्ट जी ने अपनी रचनाओं में 'बहादुरी' के साथ साथ शृङ्गार और भक्ति भी दिखलायी है। चरित-काव्य, लक्षण-ग्रन्थ, मुक्तक और अनुवाद लिखने वाले इस कवि की रचनाएँ निम्नाङ्कित हैं :—

१. हिम्मत बहादुर विरुदावली २. पद्माभरण ३. जगद्विनोद, ४. प्रबोध पचासा ५. गङ्गालहरी ६. राम रसायन ७. प्रतापसिंह विरुदावली ८. आलीजाह प्रकाश ९. ईश्वर-पचीसी, १०. भाषा हितोपदेश।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

आधुनिक हिन्दी साहित्य के अग्रनायक भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म काशी के एक धनीमानी वैश्यकुल में सं० १९०७ में हुआ। इनके पूर्वज इतिहास-प्रसिद्ध सेठ अमीचन्द (मृ० सं० १८१५) थे। पांच वर्ष के अल्प वय में माता का देहान्त हो गया और दश वर्ष की अवस्था में पिता स्वर्गवासी हुए। पिता की मृत्यु के उपरान्त ये तीन चार वर्षों तक क्वींसकालिज वाराणसी में पढ़ते रहे। पढ़ाई में इनका मन नहीं लगा। काशी के राजा शिवप्रसाद 'सितारे हिन्द' से इन्होंने अंग्रेजी पढ़ी तथा स्वाध्याय द्वारा मराठी, बंगला, गुजराती, मारवाड़ी, उर्दू, पंजाबी, आदि भाषाएँ सीखीं।

तेरह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह हुआ और पन्द्रह वर्ष की अवस्था में इन्होंने सपरिवार जगन्नाथपुरी की यात्रा की। संवत् १९३७ में पं० सुधाकर द्विवेदी, पं० रामेश्वरदत्त आदि ने इन्हें 'भारतेन्दु' की पदवी से विभूषित

किया। संवत् १९५२ में हरिश्चन्द्र का काशी-लाभ हो गया। इनकी धर्मपत्नी इनके प्राणान्त के बाद चालीस वर्ष तक जीवित रहीं। भारतेन्दु के दो पुत्र और एक पुत्री हुई थी। लेकिन पुत्रों की मृत्यु बाल्यावस्था में ही हो गयी।

अल्पायु में ही भारतेन्दु ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से जो महान् साहित्यिक कार्य किया वह सदा स्मरण रहेगा। देश, भाषा, साहित्य और प्रभु चारों के प्रेमी अजातशत्रु भारतेन्दु की कृतियाँ नाटक, काव्य, अनुवाद, स्तोत्र, उपन्यास, आख्यायिका, इतिहास, धर्म, माहात्म्य आदि हैं। इन्होंने, 'कवि-वचन सुधा' 'हरिश्चन्द्र मैगजीन' और "बाला बोधिनी" नामक पत्र प्रकाशित किये तथा अनेक संस्थायें स्थापित कीं। इस समय भारतेन्दु की अठत्तर रचनायें प्राप्त हैं। स्वतंत्रता प्रेमी भारतेन्दु ने देश की बुराइयों की निन्दा की है। पुष्टिमार्गीय (वल्लभ सम्प्रदाय के) वैष्णव होते हुए भी ये उदार विचार के महापुरुष थे। प्राचीन एवं नवीन दोनों का ग्रहण भारतेन्दु ने विवेक के साथ किया। वस्तुतः ये आधुनिक हिन्दी के नये उत्थान के जन्मदाता थे।

अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध'

उपाध्याय जी का जन्म जिला आजमगढ़ के निजामाबाद नामक स्थान में संवत् १९२२ में हुआ। मिडिल पास करने के बाद इन्होंने काशी के क्वीन्स कालिज में अध्ययन आरम्भ किया; लेकिन कुछ ही दिनों के बाद घर लौट गये और वहीं उर्दू, फारसी, संस्कृत और अंग्रेजी का अध्ययन किया। सनातन-धर्मी होते हुए भी इनकी निष्ठा सिक्ख-धर्म में थी। प्रारम्भ में ये सरकारी कानूनगों के पद पर काम करते थे और बीस वर्षों के बाद पेंशन लेकर हिन्दी-सेवा में लग गये। महामना मालवीय जी के कहने से इन्होंने काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय में बीस वर्षों तक हिन्दी के अवैतनिक अध्यापक के रूप में काम किया।

थे दिल्ली में हुए हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के अधिवेशन के सभापति भी रह चुके थे। सत्यनिष्ठ और सरल उपाध्याय जी भारतीय संस्कृति के प्रेमी थे और इनकी दृष्टि सुधारवादी थी। खड़ी बोली की काव्य-रचना के आरम्भिक युग में हरिऔध जी ने मार्ग-प्रदर्शन किया और इस बोली के प्रथम महाकवि होने का श्रेय प्राप्त किया। इनकी इक्कीस रचनाएँ हैं। आरम्भ में ब्रजभाषा में इन्होंने रचना की और बाद में संस्कृत-निष्ठ खड़ी तथा ठेठ हिन्दी में। महाकवि के रूप में इनकी प्रतिष्ठा प्रबन्ध काव्य 'प्रिय प्रवास' के कारण हुई। नाटक, उपन्यास, आलोचना और सम्पादन की ओर भी इनकी प्रतिभा प्रस्फुटित हुई। छिहत्तर वर्ष की अवस्था में (संवत् २००४ में) इनकी मृत्यु हुई। इनकी रचतायें निम्नलिखित हैं।

१—रसिक रहस्य, २—प्रेमाम्बुवारिधि, ३—प्रेम प्रपंच, ४—प्रेमाम्बु प्रश्रवण, ५—प्रेमाम्बु प्रवाह, ६—प्रेम पुष्प हार, ७—उद्बोधन, ८—काव्योपवन, ९—प्रियप्रवास, १०—कर्मवीर, ११—ऋतु-मुकुर, १२—पद्म प्रसून, १३—पद्य प्रमोद, १४—चोखे चौपदे, १५ वैदेही वनवास, १६—चुभते चौपदे, १७—रसकलश, १८—प्रद्युम्न विजय, १९—रुक्मिणी परिणय, २० प्रेम कान्ता, २१—ठेठ हिन्दी का ठाट।

जगन्नाथ दास 'रत्नाकर'

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समकालीन पुरुषोत्तमदास के पुत्र जगन्नाथ दास का जन्म काशी में सं० १९२३ में हुआ। इनकी आरम्भिक शिक्षा उर्दू, फारसी, हिन्दी और अंग्रेजी में हुई। सं० १९४८ में क्वींस कालिज बनारस से बी० ए० पास करने के बाद इन्होंने फारसी में एम० ए० तथा एल० एल० बी० पढ़ना प्रारम्भ किया; लेकिन अध्ययन पूरा न हो सका। ये अवागढ़ के खजाने के निरीक्षक तथा अयोध्या के महाराज और महारानी के व्यक्तिगत सचिव रहे। इनके दो विवाह हुए थे तथा इनके रहने का ढंग वैभवमय था। उर्दू, फारसी, संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, मराठी, बंगला, पंजाबी, अंग्रेजी आदि भाषाओं के ज्ञान के

साथ साथ आयुर्वेद, संगीत, ज्योतिष, छन्दशास्त्र, विज्ञान, योग, दर्शन और प्राचीन भारतीय संस्कृति तथा इतिहास की भी जानकारी इन्हें थी। प्रारम्भ में ये उर्दू फारसी में शायरी करते थे लेकिन बाद में ब्रजभाषा में कविता करने लगे।

रत्नाकर ने अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों का सम्पादन किया तथा साहित्यिक एवं ऐतिहासिक निबन्धों और काव्यों की रचना की। सं० १९७८ मे कलकत्ता के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अधिवेशन में सभापति हुए। आधुनिक ब्रजभाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि रत्नाकर जी की ख्याति 'उद्धव शतक' और 'गंगावतरण' नामक प्रबन्ध काव्यों के कारण हुई। बिहारी की 'सतसई' का गवेषणापूर्ण सम्पादन भी इन्होंने किया। इनकी समस्त कविताओं और ग्रन्थों का संग्रह 'रत्नाकर' नाम से काशी नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित है। रसिक रत्नाकर जी ने अधिकतर प्राचीन विषयों को अपने काव्य का आधार बनाया तथा परिष्कृत ब्रजभाषा में कविता की। यों तो वैष्णव धर्म का प्रभाव इन पर विशेष था लेकिन सामाजिक कुरीतियों तथा अन्धविश्वासों के उन्मूलन के लिए भी ये प्रयत्नशील रहे। राष्ट्रियता के समर्थक इस श्रेष्ठ कवि का देहावसान संवत् १९८९ में हरिद्वार में हुआ।

मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का जन्म सं० १९४३ में चिरगाँव (झाँसी) में हुआ। आरम्भ में इनकी रचनायें कलकत्ता से निकलने वाले 'वैश्योपकारक' पत्र में प्रकाशित होती थीं, लेकिन बाद में आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी से सम्पर्क हो जाने पर 'सरस्वती' में निकलने लगीं। इनकी प्रारम्भिक कृति 'रंग में भंग' है। हिन्दी जगत् में इनकी ख्याति 'भारत भारती' से होने लगी, और अब तक पचासों कृतियाँ प्रकाशित हो चुकी हैं। खड़ी बोली के उन्नायक, रामभक्त गुप्त जी भारतीय संस्कृति के अनन्य समर्थक हैं और मर्यादित ढंग से देश की परम्पराओं का इन्होंने उद्घाटन किया है। विगत पचास वर्षों

के हिन्दी काव्यान्दोलन की छाया इनकी रचनाओं में पड़ी है और आधुनिक काल की तीन पीढ़ियों की हिन्दी-काव्य-चेतना को इन्होंने आत्मसात् कर लिया है। भारती और भारत के प्रति निष्ठावान राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी प्रतिभा का प्रसार साहित्य सृष्टि के नाना रूपों में किया है। राष्ट्र-भावना से पूर्ण इनकी रचनाओं में 'साकेत' 'यशोधरा', 'द्वापर' 'जय भारत' तथा 'विष्णु प्रिया' अधिक प्रसिद्ध हैं। 'भारत-भारती', 'जयद्रथ-वध', 'पंचवटी', 'कुणालगीत' आदि का भी विशेष प्रसार है।

कृतियों की दृष्टि से गुप्त जी का स्थान विश्व के श्रेष्ठ कवियों में माना जा सकता है। इस कर्मयोगी कवि की प्रबन्ध रचनायें मानव जीवन के निर्माण के लिये हैं। वर्णाश्रम धर्म के प्रति आस्थावान गुप्त जी ने भारतीय जीवन को प्रस्तुत करते हुए खड़ी बोली को जो शक्ति दी इससे इसे राष्ट्र भाषा के पद पर प्रतिष्ठित करने में पूर्ण सहायता मिली। आधी शताब्दी तक सतत साहित्य सेवा करने वाले राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त सरल, निरभिमान सामंजस्यवादी संत हैं।

माखनलाल चतुर्वेदी

श्री माखनलाल चतुर्वेदी का जन्म मध्य प्रदेश के होशंगाबाद जिले के बावई नामक ग्राम में संवत् १९४६ में हुआ। ये गौड़ ब्राह्मण हैं। इनके पूर्वज जयपुर से बावई जाकर बस गये थे। राधावल्लभ सम्प्रदाय वाले परिवार में उत्पन्न श्री चतुर्वेदी जी के व्यक्तित्व में वैष्णव संस्कार है। प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद इन्होंने संस्कृत, अंग्रेजी, बंगाली, मराठी, गुजराती इत्यादि भाषाओं का ज्ञान स्वाध्याय द्वारा किया। सक्रिय कांग्रेसी और पत्रकार माखनलाल जी ने 'प्रभा', 'कर्मवीर', और 'प्रताप' का सम्पादन किया तथा 'एक भारतीय आत्मा' के नाम से हिन्दी काव्य जगत् में प्रसिद्ध हुए। व्याख्याता, गद्यकार और राष्ट्र सेवी के रूप में ख्याति प्राप्त करने वाले चतुर्वेदी जी वस्तुतः द्विवेदी युग के कवि हैं लेकिन छायावाद के प्रतिष्ठापकों में

भी इनकी गणना होती है। (सं० २००० में) हिन्दी साहित्य सम्मेलन के अध्यक्ष पद को भी इन्होंने अलंकृत किया। धुन के पक्के इस राष्ट्रीय कवि की आत्मा से विद्रोह और दर्द दोनों के स्वर निकले हैं। मातृ-भूमि के बलिपन्थी की कष्ट-सहिष्णुता इनके व्यक्तित्व में निहित है। इनकी प्रमुख रचनायें निम्नलिखित हैं :—१. कृष्णार्जुन युद्ध, २. हिम किरीटिनी, ३. साहित्य देवता, ४. हिम तरंगिणी ५. माता, ६. युग-चरण, ७. समर्पण, ८. वेणु लो गूँजे धरा, ९. कला का अनुवाद १०, अमीर इरादे गरीब इरादे।

राष्ट्रिय कवि के रूप में प्रतिष्ठित चतुर्वेदी जी ने नव जागरण और नवीन भावना को प्रोत्साहित तथा प्रभावित किया है। हिन्दी संसार में ये प्रतिष्ठा के पात्र बने रहेगें।

जयशंकर प्रसाद

काशी के प्रसिद्ध व्यापारी साहु शिवरत्न (सुँघनी साहु) के कुल में कविवर जयशंकर प्रसाद का जन्म भारतेन्दु की मृत्यु के पाँच वर्ष बाद संवत् १९४६ में हुआ। विद्वानों और कलाकारों को समादृत करने वाले शिवोपासक समृद्ध परिवार में उत्पन्न प्रसाद जी की शिक्षा क्वीन्स कालिज वाराणसी में ८ वीं कक्षा तक हुई। १२ वर्ष की अवस्था में ये पितृ-विहीन हो गये और पिता की मृत्यु के दो तीन वर्षों के भीतर ही इनकी माता की भी मृत्यु हो गई। घर पर ही संस्कृत, हिन्दी, अंग्रेजी, फारसी, उर्दू और पुरातत्त्व का अध्ययन प्रसाद जी ने किया और इनका अधिकांश जीवन वाराणसी में ही बीता। जब ये १७ वर्ष के थे तब इनके ज्येष्ठ भ्राता शम्भूरतन चल बसे और घर की गृहस्थी का पूरा बोझा इन्हें ही संभालना पड़ा। पैतृक व्यवसाय को संभालने के साथ ये नियमित रूप से अध्ययन भी करते रहे। व्यायाम और कुश्ती के शौकीन प्रसाद जी के यहाँ विद्वानों की भी मंडली जुटी रहती थी और उनके स्वागत सत्कार के साथ साथ साहित्य-चर्चा चलती रहती थी।

सादे जीवन और उच्च विचार के पोषक प्रसाद जी भारत की प्राचीन

संस्कृति और मानवता के उपासक थे। कवि-सत्संग के कारण कविता की ओर इनकी अभिरुचि बचपन से ही थी और प्रारम्भ में ब्रजभाषा में कविता बनाया करते थे। कहा जाता है कि ९ वर्ष की अवस्था में ही इन्होंने ब्रजभाषा में एक सवैया लिखी थी। इनकी प्रथम कविता 'भारतेन्दु' में प्रकाशित हुई और 'इन्दु' नामक मासिक पत्रिका के प्रकाशन की व्यवस्था हो जाने पर नियमित रूप से इनकी रचनायें इसमें निकलती रहीं। 'प्रसाद' की रचनाओं का प्रथम संग्रह 'चित्राधार' के नाम से सं० १९७५ में प्रकाशित हुआ। कविता, कहानी, नाटक, निबन्ध के इस संकलन ग्रन्थ में ब्रजी और खड़ी दोनों की रचनाएँ थीं लेकिन बाद के संस्करण में इसमें ब्रजभाषा की ही रचनायें रखी गयीं। भावुक 'प्रसाद' ने प्रतिभा, कल्पना, अध्ययन और अध्यवसाय के बल पर हिन्दी साहित्य में नये युग का प्रवर्तन किया। युगचेतना से प्रभावित होकर खड़ी बोली में इन्होंने काव्य-रचना आरम्भ की और अपनी बहुमुखी प्रतिभा का परिचय देते हुए नाटक, कविता, कहानी, उपन्यास, आलोचनात्मक और गवेषणात्मक निबन्ध आदि का प्रणयन किया। छायावाद युग के मुख्य स्तम्भ 'प्रसाद' की मौलिकता इनकी सभी कृतियों में लक्षित होती है। आधुनिक हिन्दी कहानी और नाटक के क्षेत्र में महत्त्व प्राप्त करने वाले इस महाकवि की प्रसिद्ध रचनायें निम्नलिखित हैं :—

काव्य—कामायनी, आँसू, लहर, झरना, प्रेमपथिक, कानन-कुसुम, महाराणा का महत्त्व, करुणालय।

नाटक—स्कंदगुप्त, अजातशत्रु, चन्द्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी, विशाख, जनमेजय का नाग यज्ञ, राज्यश्री, कामना, एक घूँट।

कहानी-संग्रह—आकाश दीप, इन्द्रजाल, आन्धी, छाया, प्रतिध्वनि।

उपन्यास—कंकाल, तितली, इरावती (अपूर्ण)।

निबन्ध-संग्रह—काव्य और कला तथा अन्य निबन्ध, चित्राधार।

अनेक चिन्ताओं से ग्रस्त होने के कारण प्रसाद जी अकाल में ही काल-कवलित हो गये और (कार्तिक शुक्ला एकादशी) सं० १९९४ में इनका शिव-सायुज्य हुआ।

—

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

हिन्दी के विद्रोही और क्रान्तिकारी कवि सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का जन्म सं० १९५३ में माघ शुक्ला पञ्चमी को बंगाल के मेदिनीपुर जिले में महिषादल राज्य में हुआ। इनके पिता पं० रामसहाय त्रिपाठी उन्नाव जिले के गढ़कोला नामक गांव के निवासी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे और महिषादल राज्य में राजकीय कर्मचारी थे। निराला जी की शिक्षा बंगला के माध्यम से हुई और वहीं इन्होंने मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की। निराला जी का विवाह तेरह वर्ष की अवस्था में हुआ था और २३ वर्ष की अवस्था में पत्नी का देहान्त हो गया। इन्हें दो संतानें थी। एक लड़के और एक लड़की की मृत्यु हो गयी। इनकी पत्नी नियमतः 'रामचरित मानस' का पाठ करती थीं और उससे प्रेरित होकर इन्होंने भी हिन्दी सीखी। प्रारम्भ में ये बंगला में कविता करते थे पर हिन्दी सीख लेने पर हिन्दी में कविता करने लगे। परिस्थिति का प्रभाव निराला जी पर पर्याप्त मात्रा में पड़ा।

विपत्तियों का सामना करने के कारण निराला जी की प्रवृत्ति दार्शनिक हो गयी तथा अंधविश्वासों, रुढ़ियों और वाह्याचारों पर कठोर व्यंग्य करते हुए ये शोषितों के प्रति ढल गये। अपने साधनामय जीवन में इन्होंने रामकृष्ण परमहंस और विवेकानन्द को विशेष रूप से अपनाया। स्वाभिमानी निराला जी ने एक सामान्य विवाद पर महिषादल की नौकरी छोड़ दी। कुछ दिनों रामकृष्ण अद्वैताश्रम की हिन्दी पत्रिका 'समन्वय' का सम्पादन किया और बाद में कलकत्ता से निकलने वाले 'मतवाला' में भी दो तीन वर्षों तक रहे। घोर आर्थिक संकटकाल में ये लखनऊ में रहे और स्वेच्छा से 'गंगा पुस्तक माला' तथा 'सुधा' के सम्पादन में योग देते रहे। व्यक्तित्व और कृति दोनों की दृष्टि से निराले इस महाकवि ने हिन्दी काव्य क्षेत्र में नाना प्रकार के प्रयोग किये और आधुनिक काव्य धारा को नयी दिशा देने में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। भारतीय संस्कृत के द्रष्टा, बहुमुखी-प्रतिभा-सम्पन्न निराला की प्रसिद्ध कृतियां निम्नलिखित हैं—

काव्य—परिमल, अणिमा, गीतिका, तुलसीदास, अनामिका, कुकुरमुत्ता, बेला, नये पत्ते, अपरा।

उपन्यास—अप्सरा, अलका, प्रभावती, निरुपमा, उच्छृंखल, चोटी की पकड़, काले करनामे, चमेली।

कहानी संग्रह—लिली, सखी, चतुरी चमार, सुकुल की बीबी।

रेखा चित्र—कुल्ली भाट, बिल्लेसुर बकरिहा।

आलोचनात्मक निबन्ध संग्रह—प्रबन्धपद्म, प्रबन्ध प्रतिमा, प्रबन्ध परिचय, रवीन्द्र-कविता-कानन।

जीवनियां—राणा प्रताप, भीम, प्रह्लाद, ध्रुव, शकुन्तला।

मध्यवर्ग में उत्पन्न संघर्षशील, आदर्श, महाप्राण निराला ने हिन्दी की सेवा में सं० २०२० में अपना उत्सर्ग किया।

सुमित्रानन्दन पन्त

अल्मोड़ा के कौसानी नामक गाँव के पर्वतीय श्री गङ्गादत्त पन्त के आत्मज श्री सुमित्रानन्दन पन्त का जन्म सं० १९५७ में हुआ। बचपन में ही ये मातृहीन हो गये। उस समय इनका नाम गुसाईं दत्त था। जब ये अल्मोड़ा में पढ़ने गये तब इन्होंने अपना नाम सुमित्रानन्दन रख लिया।

काशी के क्वींस कॉलिज और जयनारायण हाई स्कूल से पढ़कर ये अंग्रेजी की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए प्रयाग के म्योर सेंट्रल कॉलिज में भर्त्ती हुए; पर अध्ययन आगे नहीं चल सका। स्वतन्त्ररूप से इन्होंने अंग्रेजी, बंगला, संस्कृत तथा हिन्दी-साहित्य का अध्ययन किया। दर्शन और साहित्य इनके प्रिय विषय रहे। एकान्त चिन्तन और गम्भीर अध्ययन द्वारा इन्होंने शिक्षा की कमी को पूरा किया।

ये बचपन से ही कविता करने लगे थे और कूर्माचल प्रदेश की प्राकृतिक सुषमा ने इन्हें विशेष प्रभावित किया। सौन्दर्योपासक सुकुमार कवि पन्त

की आरम्भिक कविताएँ 'वीणा' में संग्रहीत हैं। सं० १९८७ में पन्त जी कालाकाँकर चले गये और दश वर्षों तक वहाँ रहकर गान्धीवादी और मार्क्स-वादी विचारधारा का मन्थन करते रहे।

अवस्था, अध्ययन, जीवन-दृष्टि और राष्ट्र-भावना के अनुसार इनकी कारयित्री प्रतिभा ने नये नये रूप ग्रहण किये हैं। वर्तमान युग के प्रवर्त्तक 'प्रसाद' और 'निराला' की भाँति पन्त जी का भी छायावादी कवियों में महत्त्वपूर्ण स्थान है। सं० २००७ में पन्त जी 'आल इण्डिया' रेडियो' के परामर्शदाता के पद पर नियुक्त हुए।

आधुनिक युग के सर्वोच्च प्रकृति-कवि सुमित्रानन्दन पन्त ने साहित्य की अनेक दिशाओं का स्पर्श किया है और काव्य, नाटक, कहानी, समीक्षा, अनुवाद, आत्म-कथा आदि का प्रणयन किया है।

इनकी प्रकाशित रचनाएँ इस प्रकार हैं :—

काव्य—उच्छ्वास, ग्रन्थि, वीणा, पल्लव, गुञ्जन, युगान्त, युगवाणी, ग्राम्या, स्वर्णकिरण, स्वर्णधूलि, युगपथ, उत्तरा, वाणी, कला और बूढ़ा चाँद।

रूपक—रजत शिखर, शिल्पी, सौवर्ण, अतिमा। ज्योत्स्ना (भाव-नाट्य)।

कहानी—पाँच कहानियाँ।

समीक्षा—गद्य पथ।

आत्मकथा—साठ वर्ष—एक रेखाङ्कन।

अनुवाद—मधु ज्वाल।

संचयन—आधुनिक कवि, पल्लविनी, रश्मि-बन्ध, चिदम्बरा।

—

महादेवी वर्मा

महादेवी वर्मा का जन्म उत्तरप्रदेश के फरुँखाबाद जिले में सं० १९६४ में हुआ था। इनके पिता श्री गोविन्द प्रसाद वर्मा (एम० ए०, एल एल० बी०) भागलपुर के एक महाविद्यालय में प्रधानाचार्य थे। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा इन्दौर में हुई और घर पर ही सङ्गीत तथा चित्रकला इन्होंने सीखी। अल्प-वय में ही विवाह होने के कारण इनका पढ़ना छूट गया। बाद में एम० ए० तक की परीक्षाएँ इन्होंने प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की।

सरल स्वभाव, मृदु व्यवहार और परिष्कृत रुचि की महादेवी जी महिला-महत्त्व के लिए सदा यत्नशील रही हैं। प्रयाग महिलाविद्यापीठ की सफलता के लिए इन्होंने सब कुछ किया है। प्रधानाचार्या के रूप में कार्य करती हुई महादेवी जी ने इस संस्था को अखिल भारतीय संस्था के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया है। ये उत्तरप्रदेश विधान परिषद् की सदस्या भी रही हैं।

विद्यार्थी-जीवन से ही काव्य-निर्माण में प्रवृत्त होने वाली महादेवी वर्मा ने हिन्दी साहित्य में वेदना का निस्सीम विस्तार किया है। इन्होंने निम्नलिखित निर्मिति की है:—

१—नीहार, २–रश्मि, ३–नीरजा, ४–सान्ध्यगीत, ५–दीपशिखा, ६–स्मृति की रेखायें, ७—अतीत के चलचित्र ८–शृङ्खला की कड़ियाँ इत्यादि।

इनके अतिरिक्त आलोचनात्मक भूमिकाएँ इन्होंने लिखीं हैं और उत्कृष्ट गद्य-लेखिका के रूप में भी ख्याति प्राप्त की है।

आधुनिक युग की मीराँ महादेवी को आत्मीयों का सदा अभाव रहा।

रामधारी सिंह 'दिनकर'

विहार के ओजस्वी यशस्वी कवि रामधारी सिंह 'दिनकर' का जन्म सं० १९६५ में सिमरिया (मुंगेर) में हुआ। पटना विश्वविद्यालय से बी० ए० (आनर्स) की परीक्षा उत्तीर्ण कर आपने अनेक वर्षों तक सरकारी सेवा की। प्रधानाध्यापक, सब-रजिस्ट्रार, उपनिर्देशक, प्रोफेसर का कार्य करते हुए भी निर्भीक रूप से दिनकर ने क्रान्तिकारी उद्गार और राष्ट्र-प्रेम व्यक्त किया है। इस विप्लवी कवि की हुंकार आद्यन्त आत्मविश्वास और महात्वाकांक्षा से अनुप्राणित है।

दिनकर जी ने बाल साहित्य, लघुकथाएँ, निबन्ध, काव्य और पुष्ट विवेचनात्मक ग्रन्थ लिखे हैं। अनवरत हिन्दी-सेवा और राष्ट्रियता का पुरस्कार भी समय समय पर इन्हें मिलता गया है। शिक्षा-जगत् ने इन्हें डी० लिट्० की उपाधि से विभूषित किया और राजनीति ने राज्य-सभा की सदस्यता और पद्मश्री प्रदान की।

अन्ताराष्ट्रिय ख्यातिलब्ध राष्ट्रकवि 'दिनकर' सम्प्रति भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति हैं।

श्री 'दिनकर'-विरचित साहित्य :—

काव्य—रेणुका, हुंकार, रसवन्ती, सामधेनी, द्वन्द्वगीत, बापू, रश्मिरथी, कुरुक्षेत्र, इतिहास के आँसू, उर्वशी।

निबन्ध संग्रह—अर्धनारीश्वर, मिट्टी की ओर, रेती के फूल, हमारी सांस्कृतिक एकता।

बाल-साहित्य—मिर्च का मजा, सूरज का ब्याह, धूप छाँह, चित्तौर का साका, भारत की सांस्कृतिक कहानी।

'संस्कृति के चार अध्याय' शोध और अनुशीलन-प्रधान विराट ग्रन्थ है।

निकष

चन्दबरदाई

सम्राट् पृथ्वीराज और चन्दबरदाई की कथा चाहे कल्पना-प्रसूत हो, चाहे 'पृथ्वीराज रासो' के नाम, काल, व्यक्तियों और घटनाओं में असङ्गतियाँ हों, पर हिन्दी के प्रथम महाकाव्य के रूप में 'रासो' की प्रसिद्धि तो है ही। इस बृहत्काय प्रबन्ध से चन्दबरदाई के ओजस्वी, उत्साही तथा कर्मठ व्यक्तित्व का पता चलता है।

'रासो' के आरम्भ में कवि ने वर्ण्य विषय और भाषा का उल्लेख करते हुए कहा है :—

उक्ति धर्मविशालस्य राजनीति नवं रसाः।
षड्भाषा पुरानं च कुरानं कथितं मया॥

अङ्गाङ्गी भाव से वर्णित नव रसों वाले, धर्म और राजनीति विषयक उक्तियुक्त, पुराण-कुरान के समान (सम्मानास्पद) 'रासो' की भाषा छमेल है। मेरे विचार से रासो की षड्भाषाएँ १. संस्कृत २. माहाराष्ट्री, ३. शौरसेनी, (ब्रजी) ४. मागधी, ५. पैशाची और ६. अपभ्रंश हैं। कुछ लोग मागधी को (पूर्वी अञ्चल की भाषा होने से) इसमें व्यवहृत नहीं मानते हैं। किन्तु काव्य और इतिहास के अनुशीलन करने पर उनका पक्ष प्रबल नहीं जान पड़ता। ब्रजी की तरह मागधी की प्रकृति भी शौरसेनी है तथा जैनियों ने अपने प्रचार-प्रसार में मागधी का उपयोग कर इसके क्षेत्र का विस्तार कर दिया है। यदि शूरसेन प्रदेश की भाषा राजस्थान में सामान्य काव्यभाषा के रूप में गृहीत हो सकती है तो एक ही 'मूल' से सम्बद्ध मागधी क्यों नहीं? संस्कृत के सम्पर्क से उद्भूत (सहज) 'पारसी' या यों कहिये कि कैकय पाञ्चालादि पश्चिमोत्तरी प्रदेशों की 'पैशाची' भी जब 'चन्द' ने अपनाली है तो मागधी क्यों छोड़ते? हां, प्राकृतों के रूढ़िमुक्त रूप का व्यवहार अधिक है।

उक्त षड्भाषा-चन्द्रिका से प्रकाशित राजस्थानी 'चन्द' की यह वीररसात्मक कृति (रासो) प्रशस्ति काव्य है। इसमें कवित्त (छप्पय) साटक

(शार्दूल विक्रीडित) त्रोटक, गाहा (गाथा), दुहत्थ (दोहा) आदि छन्द प्रयुक्त हैं। यह समय-पुष्ट-महाकाव्य (Epic of growth) शुक्ल जी की दृष्टि में 'भट्टभणन्त' मात्र है।

विद्यापति

वीरगाथाकाल के 'चंद' आर्यावर्त्त के पश्चिमी भाग की विभूति हैं और विद्यापति पूर्वी अञ्चल के ऐश्वर्य। इनके कोकिलकंठ की ध्वनि आज भी मिथिला की अमराइयों में गूँजती है। यद्यपि अवहट्ठ (अपभ्रंश) में इनकी वीररसात्मक कविताएँ हैं पर इन्हें वीरगाथा का कवि न मानकर आचार्य शुक्ल ने आदि काल के फुटकल खाते में डाल दिया है। भगवान् के रस रूप को ग्रहण करनेवाले शृङ्गारिक कवि विद्यापति मुख्यतः सौन्दर्य और प्रेम के गायक हैं। शैव, वैष्णव और शाक्त सम्प्रदायों में समानरूप से आदर पानेवाले इस कवि ने विभिन्न धार्मिक विश्वासों का समन्वय अपने पदों में किया है; नानात्व में एकत्व का आभास दिया है।

विद्यापति दरबारी होते हुए भी जनकवि हैं और भक्त होते हुए भी नायिका के नखशिख पर नजर गड़ानेवाले गीतिकार। अपने प्रगीत मुक्तकों में इस रसिक ने राधाकृष्ण के हास-विलास की विविधता प्रदर्शित की है। संस्कृत के विद्वान् होते हुए भी विद्यापति ने अपना झुकाव प्रसाद-मधुरा देशभाषा-मैथिली के प्रति दिखाया है। इनके श्रुति-मधुरपद जन-मन में घर कर गये हैं। लोक-जीवन का व्यापक अनुभव रखनेवाले विद्यापति के 'नचारी पद' (शिव से सम्बद्ध) मिथिला में खूब गाये जाते हैं और इनकी सूक्तियाँ एवं लोकोक्तियाँ वहाँ बहुत चलती हैं।

हिन्दी साहित्य की उपलब्ध प्रामाणिक सामग्री के आधार पर इन्हें हिन्दी का आदि कवि भी कहा गया है।

कबीर

हिन्दी काव्य में निर्गुण धारा का प्रवर्त्तन कबीर ने किया। ये उदारता-वादी निवृत्तिमार्गी (ज्ञानाश्रयी) सन्त थे। निर्गुण ब्रह्मको इन्होंने राम, हरि, केशव, गोविन्द आदि से सम्बोधित किया है। एकता का प्रतिपादन करते हुए कबीर ने कहा है :—

'अल्ला, राम, करीम, केसो, हरि, हजरत नाम धरावा।'

अनिर्वचनीय ब्रह्म को चाहे जिस नाम से पुकारा जाय वह परात्पर है; अनुभव के द्वारा जाना जा सकता है।

वेद-विरोधी विद्रोही कबीर ने ईश्वरोपासना के बाहरी विधानों को, या कर्मकाण्ड को अग्राह्य माना है; पर साधना में गुरु को महत्त्व दिया है। इनके 'पन्थ' में जीव और ब्रह्म की एकता के प्रतिपादन के लिए अद्वैत सिद्धान्त, इन्द्रिय-निग्रह और रहस्य-साधना के लिए हठयोग की क्रियाएँ, भगवत्-प्रेम के लिए सूफियों की भावात्मक पद्धति तथा वैष्णवों की प्रपत्ति (आत्मसमर्पण) का मेल है। इस प्रकार इनका कोई स्वतन्त्र दार्शनिक पक्ष नहीं है। जीव और ब्रह्म में भेद पैदा करनेवाली 'माया' का वर्णन कबीर ने अपने ढंग से विस्तृत रूप में किया है। उसे 'अविद्या माया' के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

कबीर की उक्तियों में उनका भक्त रूप ही मुख्य है, कवि-रूप गौण। योग के पारिभाषिक शब्दों और रूपकातिशयोक्तियों के प्रयोग द्वारा इन्होंने चमत्कार प्रदर्शित किया है। उलटवाँसियाँ इसी कारण दुरूह हैं। इनकी तर्क-पुष्ट सधुक्कड़ी भाषा के 'बहते नीर' में तीक्ष्ण व्यङ्ग्य, मार्मिकता और प्रबोधन अवश्य है पर अल्पविद्य का महागर्व भी कहीं कहीं व्यक्त हो जाता है। इनकी साखी, शब्दी और रमैनी में क्रमशः जीव, ब्रह्म और माया (प्रपञ्च) का प्रतिपादन है।

सूरदास

भगवान् की लोकरञ्जनकारी लीला का गान करनेवाले वल्लभ-सम्प्रदायी सूर व्रजभाषा के रससिद्ध कवीश्वर हैं। अपनी साम्प्रदायिक मान्यता के अनुसार इन्होंने वात्सल्य भाव के (बाल-लीला सम्बन्धी) पद अधिक लिखे हैं। आत्म-हीनता सूचक विनय के गेय पदों में दास्य भाव है और शृंगार के पदों में माधुर्य बोधक सख्य भाव। भक्ति की व्यापक मधुमयी भूमिका में रमनेवाले रसिक सूर ने निर्गुण को ('सब विधि अगम') अग्राह्य माना है।

अनुभवी 'सूर' बहुश्रुत तथा चिन्तनशील थे। मानवीय चित्त-वृत्तियों का विस्तृत चित्रण इनके काव्य में मिलता है। बालकों की प्रकृति और प्रवृत्ति के चित्रण में तो ये विश्व में अद्वितीय हैं। शृंगार के उभय पक्षों का मार्मिक उद्घाटन कर इन्होंने इसकी रसराजता सिद्ध की है। इस पुष्टिमार्गी संत ने भगवान् के शक्ति-चित्रण पर कम ध्यान दिया है।

सूरसागर का अमोल रत्न है—'भ्रमरगीत'। इस प्रकार का श्रेष्ठ उपालम्भ काव्य अन्यत्र नहीं मिलता। इसमें एक ओर तो सगुण-निर्गुण का विवेचन हुआ है और दूसरी ओर विप्रलम्भ की सभी अन्तर्दशाओं का उल्लेख है। स्त्री-स्वभाव का सूक्ष्म परिज्ञान रखनेवाले विनोदी 'सूर' ने इस प्रकरण में 'प्रेमाभक्ति' की अचल प्रतिष्ठा की है।

जयदेव और विद्यापति की गीति-परम्परा के उन्नायक 'सूर' की सुरीली तान लोक-मानस को सद्यः आनन्दमग्न करनेवाली है। इनका लोकातीत प्रेम आर्य-पथ को छुड़वा कर रूप-रस में रमाने वाला है।

जायसी

लोक-भाषा अवधी को प्रबन्ध काव्य की परिधि में सर्वप्रथम प्रतिष्ठित करने वाले जायसी, सूफी कवि थे। अपभ्रंशकालीन सिद्धों और सन्तों की दोहे-चौपाई की काव्य-रचना-पद्धति को जायसी ने भी अपनाया और फारसी के मसनवी ढंग पर प्रेम-प्रधान चरित-काव्य पदमावत की रचना की। पदमावत की कथावस्तु

का पूर्वार्ध इतिहास-सम्मत है और उत्तरार्ध कल्पना-प्रसूत। इसकी लोकप्रचलित कथा के प्रधान पात्र (रत्नसेन, पद्मावती, अलाउदीन, गोरा-बादल) ऐतिहासिक हैं। इसके लौकिक कथानक में आध्यात्मिक-प्रेम का निरूपण है, इस कारण जायसी को निर्गुण भक्ति की प्रेमाश्रयी शाखा का प्रतिनिधित्व करने वाला कहा गया है। सूफी-साधना में परमात्मा के प्रति प्रेम (इश्क) का निवेदन चरम लक्ष्य है, अतः पदमावत की कथा में 'प्रेम की पीर' का अनुपम चित्रण है। रत्नसेन की पटरानी नागमती का विरह-वर्णन हिन्दी साहित्य में बेजोड़ है।

पंडितों के पछलगे जायसी ने हिन्दू धर्म की बहुत सी बातें सुनी थीं। सुनी सुनायी बातों के प्रयोग में कहीं कहीं दोष आ गये हैं। संस्कृत का ज्ञान न रहने के कारण इन्होंने तद्भव तथा देशज शब्दों का ही प्रयोग अधिक किया है जिससे ठेठ अवधी की स्वाभाविकता बनी हुई है। जायसी ने अलङ्कारों का प्रयोग चमत्कार प्रदर्शन के लिए नहीं किया है। कल्पना या उत्प्रेक्षा का सहारा रूप-वर्णन में ही लिया है।

जायसी अपने सरस, सशक्त, दर्शनसिक्त महाकाव्य के कारण अमर हैं।

तुलसीदास

शील, सेवा और संयम के प्रतिष्ठापक महात्मा तुलसीदास विश्वकवि हैं और उनका रामचरितमानस विश्वकाव्य। हिन्दी के इस सर्वोत्कृष्ट कीर्त्तिस्तम्भ में मानव जीवन की अनेकरूपता चित्रित है। वस्तुतः यह भारतीय संस्कृति की प्रतिमा है और है मानवता के सर्व्वोच्च आदर्शों का स्थापक।

आदर्शवादी तुलसी ने प्रबन्ध और मुक्तक दोनों प्रकार की रचनाएँ की हैं। ब्रजी और अवधी पर पूर्ण अधिकार रखने वाले इस महाकवि ने काव्य के कला-पक्ष और भाव-पक्ष दोनों में समान निपुणता दिखाते हुए अनेक काव्य रूपों में सृष्टि की हैं। इन्होंने अपने विशाल ज्ञान और लोक विषयक सूक्ष्मातिसूक्ष्म अनुभव को रामकथा के माध्यम से व्यक्त कर जीवन के विविध मार्मिक सम्बन्धों का उद्घाटन किया है।

भगवान् की तीनों विभूतियों का सम्यग् निरूपण कर लोक-संग्रही तुलसी ने उत्तरी भारत को 'सीय राममय' कर दिया। इस समन्वयवादी महाकवि ने ज्ञान और भक्ति के पुटपाक से तैयार किये अपने राम-रसायन से पतित लोक को नैतिक शक्ति दी। काव्य और धर्म-ग्रन्थ दोनों के रूप में अगर हिन्दी के किसी प्रबन्ध को प्रतिष्ठा मिली है तो केवल 'रामचरितमानस' को। लोक में श्रीमद्भागवत के समान प्रचार 'मानस' का ही हुआ।

मीराँ

गिरिधर गोपाल के प्रति अनन्य प्रेम प्रदर्शित करने वाली मीराँ भक्तिकाल की सर्वश्रेष्ठ कवयित्री हैं। आत्म-निवेदन-प्रधान अपने गीति-काव्य में संयोग-वियोग की (मानसिक) अनुभूतियाँ इन्होंने प्रकट की हैं। माधुर्यमूलक तन्मयता की अभिव्यक्ति करनेवाली मीराँ की रचनाओं में रहस्य या निर्गुण ब्रह्म का समावेश अपने आप हो गया है। उपासना की दृष्टि से इसे भक्ति की सर्वोच्च भूमिका मानना ही ठीक हैं। मीरा की साधना के विषय में चलने वाले सगुण-निर्गुण-विवाद का अन्त भी इसे मान लेने पर हो जाता है। स्वच्छन्द प्रेम के सख्य भाव (दाम्पत्य) को व्यक्त करने वाले पदों में जहाँ विरहोक्तियाँ हैं वहाँ मधुरोपासना है, कुछ सूफी प्रभाव नहीं।

गीति-काव्य का आदर्श प्रस्तुत करने वाली मीराँ के हृदय से निकली निर्मल प्रेम की धारा भजनानंदी लोक-मानस को सदा तृप्त करती रहेगी।

रहीम

रहीम की रचनाएँ सरस भावनात्मक, लोक व्यवहारात्मक और सूक्ति-प्रधान हैं। राजनीति-नियामक रहीम ने ब्रजी और अवधी की अपनी रचनाओं में तथ्य या लोकानुभव का अच्छा स्वरूप प्रस्तुत किया है। इनके प्रिय विषय रीति, शृङ्गार, नीति और भक्ति हैं। काव्य-रीति और दरबारी प्रवृति दोनों का मेल इनके काव्यों में हैं। संस्कृत के श्लोकों का भाव छप्पय और दोहों में उतारने में ये बड़े प्रवीण हैं। इनके नीति-विषयक दोहों का प्रभाव अवान्तर-

कालीन कवियों पर भी पड़ा है। संवेदनशील हृदयवाले रहीम ने अपनी शोकानुभूति का अङ्कन अकृत्रिम ढंग से किया है। इनके नायिका-भेद वाले ग्रन्थ में भारतीय-जीवन के मधुर चित्र हैं।

केशवदास

कला-प्रिय केशव हिन्दी काव्य-शास्त्र के प्रथम आचार्य थे, पर रससिद्ध-कवीश्वर नहीं। भाषा-सौष्ठव और चातुर्य-चमत्कार में (अलङ्कारवादी) केशव अद्वितीय थे। इनकी रीति-बद्ध रचनाओं में छन्द, अलङ्कार, रस, वृत्ति और नायिका-भेद आदि का तो निरूपण है ही प्रकृति-चित्रण में भी परम्परा-पालन है।

संस्कृत साहित्य के पाण्डित्य-मोह ने इन्हें हिन्दी के कठिन-काव्य का 'प्रेत' बना दिया। यद्यपि केशव की कविता में संस्कृत के 'नैषध चरित' की तरह दोष-पुञ्ज के दर्शन होते हैं तथापि काव्य के विकास में इनका योग है। 'रामचन्द्रिका' में 'मानस' की तरह जीवन की व्यापक विवृति न होने पर भी वस्तु-चित्रण तथा संवाद-योजना में केशव सफल हैं।

रसखान

सख्य-भाव से भगवान् कृष्ण की आराधना करने वाले रसखान पुष्टिमार्ग की सङ्कीर्णताओं से मुक्त थे। उपास्य के प्रति इनकी सच्ची तन्मयता थी। युवा कृष्ण की लीलाओं का वर्णन इन्होंने खुलकर किया है। इनकी उक्तियों में आत्म-निवेदन का स्वर ऊँचा है। कृष्ण के रसमय रूप पर रीझनेवाले रसखान वस्तुतः रसिक-शिरोमणि थे। वैष्णवीय उदारता का परिचय इन्होंने शङ्कर और गङ्गा के वर्णन में दिया है। लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की ओर जानेवाले रसखान ने प्रेमतत्त्व का विश्लेषण करते हुए कहा है:—

बिनु गुन जोबन रूप धन बिनु स्वारथ हित जानि।
शुद्ध, कामना तें रहित, प्रेम सकल रसखानि॥

इनकी सरल, सरस, प्रवाहमयी मुक्तक रचनाओं में मुख्य भाव 'प्रेम' ही है।

सेनापति

सहृदय कवि सेनापति की कविताएँ काव्य-सौन्दर्य से पूरित हैं। प्रकृति के विभिन्न व्यापारों तथा सुकुमार और भीषण दृश्यों का सूक्ष्म अङ्कन इन्होंने चित्रात्मकता तथा हृदयहारी मौलिकता के साथ किया है।

ओज-माधुर्यपूर्ण प्रौढ़ शैली में निबद्ध इनके चरित-काव्य में अकृत्रिम प्रवाह है; राम की शक्ति और भक्त-वत्सलता का विस्तार है। आत्माभिमानी सेनापति ने अपने विषय में कहा है :—

"सेनापति सोई सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कवि कान दै सुनत कविताई है।"

शब्दालङ्कार-प्रधान घनाक्षरी छन्दों में अपना नामोल्लेख करना ये न भूल सके हैं।

प्रकृति-प्रेमी इस कवि के संयोग-वियोग-वर्णन में प्रसाद-गुण है। इनकी आधी रचनाएँ भक्ति-विषयक हैं और आधी रीत्युन्मुख।

बिहारी

सुकृती कवि बिहारी ब्रजी के सर्वश्रेष्ठ मुक्तककार हैं। रूप-वर्णन और सुकुमारता चित्रण में इन्होंने अद्भुत चमत्कार दिखाया है। प्रेम सम्बन्धी सूक्ष्म अनुभूतियों का अङ्कन भी इन्होंने खूब किया है। 'संयोग' में इनका मन रमा है और 'वियोग' में इनकी बुद्धि जगी है। जीवन के व्यावहारिक पक्ष का उद्घाटन करनेवाले इनके नीति के दोहों में उक्ति-वैचित्र्य है। भक्ति के दोहों में सच्चे उपासक की भावुकता नहीं आ पायी है। सब कुछ होते हुए भी भाषा की समास-शक्ति का अच्छा परिचय बिहारी ने दिया है।

भूषण

स्वातन्त्र्य और राष्ट्र-प्रेम से पूरित ओजमय काव्य के रचयिता भूषण उत्कृष्ट कलावादी कवि हैं। हिन्दी के इस प्रथम जातीय कवि की कविता में वीर रस की प्रधानता है। क्रोध, क्षोभ, उपहास के चित्रण में ये जितने सफल हैं उतने उदात्त वृत्तियों के अङ्कन में नहीं। अलङ्कार-चमत्कार और उक्ति-वैचित्र्य की दृष्टि से भूषण अग्रगण्य हैं। अपनी काव्य-भाषा में इन्होंने अरबी-फारसी और जनभाषा के शब्दों को भी अपनाया है। शब्दों के विकृत रूपों के प्रयोग से इनकी भाषा दुरूह अवश्य हो गयी है पर ओज के योग से यह दोष ढँक गया है।

देव

बहुश्रुत देव शृंङ्गार के व्यापक वर्णन के लिये ख्यात हैं। रूप वर्णन में इन्होंने आलङ्कारिक परम्परा का भी पालन किया है और गहन अनुभूति की भी अभिव्यक्ति की है। एकनिष्ठ प्रेम के समर्थक देव स्वकीया में ही शृङ्गार की निष्पत्ति तथा शृङ्गार में ही सब रसों का अन्तर्भाव मानते हैं। 'काम' की पूर्ति के विना परमपद (मोक्ष) को इन्होंने तुच्छ कहा है। देव धर्माविरुद्ध काम के समर्थक हैं।

सौन्दर्य के पारखी देव ने संयोग-वर्णन में हास-विनोद का समावेश स्वाभाविक ढंग से किया है। ऐसे स्थलों पर मनोवैज्ञानिक सजीवता दिखाई देती है। इनके वियोग-वर्णन में अनुभूति की गम्भीरता है, कल्पना की करामात या अत्युक्ति की अतिशयता नहीं।

संस्कृतज्ञ देव की सानुप्रासिक पदावली में तत्सम शब्दों का आग्रह रहते हुए भी ब्रजभाषा का माधुर्य बना हुआ है। अप्रचलित या गढ़े हुए शब्दों के प्रयोग से कहीं कहीं भाव-व्यञ्जना में दुरूहता अवश्य आ गयी है।

उदार देव राधा-कृष्ण के उपासक थे पर इनका प्रेम-पन्थ न्यारा है। इनकी कविताओं में भक्ति और दर्शन दोनों का निरूपण है। शृङ्गार और शान्त दोनों रसों पर इनका असाधारण अधिकार है।

घनानन्द

काव्य के भाव-पक्ष को महत्त्व देनेवाले घनानन्द, प्रेमी जीव थे। रीति के बन्धनों को स्वीकार न करते हुए इन्होंने अपनी कृतियों में अनुभूति की तीव्रता, गहराई और सचाई दिखायी है। घनानन्द की दृष्टि में स्नेह मार्ग ऋजु है, वक्र नहीं; फिर भी इनकी कविता में व्यक्त 'नेह की पीर' को समझने के लिए हृदय की आँख चाहिए। इनके सौन्दर्य-वर्णन में भी हृदय की वही तन्मयता है।

चित्रमयी लाक्षणिक वक्रता के सहारे विप्रलम्भ की अन्तर्दशाओं का मार्मिक चित्र प्रस्तुत करनेवाले घनानन्द रीतिकाल के अन्यतम रीतिमुक्त कवि हैं।

पद्माकर

राज्याश्रित कविराज पद्माकर ने यद्यपि एक साथ रति, भक्ति, हास्य, उत्साह और प्रकृति वर्णन आदि पर अपनी कलम चलायी है पर इनका प्रकृत-क्षेत्र शृङ्गार है। प्रशस्तिपाठी पद्माकर का वीर-काव्य यद्यपि साहित्यिक उत्कर्ष-सम्पन्न है, पर 'शिवराज-भूषण' की सी ख्याति अर्जित नहीं कर सका। इसका मुख्य कारण यही है कि इसके नायक 'हिम्मत बहादुर' आदर्श-लोक-नायक नहीं थे।

इन्होंने निर्वेद तथा भक्ति के चित्रण में पश्चात्ताप की मार्मिक अभिव्यक्ति की है; पर, इनके उद्दीपनकारी प्रकृति-वर्णन में ऋतुचर्या की सामग्री इकट्ठी की गयी है और अधिकतर शब्दच्छटा है।

इनकी सम्पूर्ण काव्य-सम्पदा पर दृष्टिपात करने पर यह कहा जा सकता है कि अपनी व्यवस्थित मृदु-मसृण-काव्य-भाषा में इन्होंने माधुर्य-ओज-प्रसाद का योग अच्छा बैठाया है। ये रीतियुग के अन्तिम कवि हैं।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

सर्वतोमुखी प्रतिभा-सम्पन्न साहित्यकार भारतेन्दु की कविता में मुख्यतः भक्ति, शृङ्गार और स्वदेश प्रेम है। राधारानी के गुलाम इस मानी कवि के भक्ति-पर काव्यक में रूप-माधुरी, प्रेम, मान, मिलन, विरह, दानलीला, मानलीला,

रासलीला सब कुछ है। इन्होंने ज्ञान-प्रेम, राम–कृष्ण, सगुण-निर्गुण, माधुर्य-दास्य आदि के वर्णन में समन्वय-बुद्धि प्रदर्शित की है। इनके प्रकृति-चित्रण में वस्तु व्यापार के संश्लिष्ट चित्र हैं।

देशभक्ति की कविताओं में अतीत के प्रति अनुराग, वर्तमान के प्रति क्षोभ और भविष्य के प्रति चिन्ता व्यक्त की गयी है। अपनी मुकरियों में बाबू साहब ने अँगरेज, अंगरेजी, नवीन-शिक्षा और सभ्यता पर फबती कसी है।

सामाजिक समस्याओं का निदान प्रस्तुत करने वाले और हिन्दी कविता को जन-जीवन के निकट ला खड़ा करनेवाले हरिश्चन्द्र ने मातृभाषा का महत्त्व इन शब्दों में प्रकट किया है:—

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति कौ मूल।
बिन निज-भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल॥

इनकी मुक्तक रचनाओं में विविध छन्दों की छटा है। काव्य-भाषा प्रसाद-माधुर्य-सम्पन्न शुद्ध ब्रजभाषा है।

हरिऔध

द्विवेदी-युग के प्रधान कवि अयोध्यासिंह उपाध्याय की ख्याति का आधार खड़ी बोली का प्रथम महाकाव्य 'प्रिय-प्रवास' है। इनके पूर्व हिन्दी काव्य-सृष्टि में तुकान्त में ही कवितान्त माना जाता था पर इन्होंने अतुकान्तता का प्रसार किया। 'प्रियप्रवास' के 'कृष्ण' लोक-सेवक महापुरुष हैं और 'राधा' हैं पर-दुःख-कातरा समाज-सेविका। 'वैदेही-वनवास' के नायक 'राम' भी जन-हित में दत्त-चित्त हैं।

भाषा के क्षेत्र में देशी-विदेशी बीज बोने वाले उपाध्याय जी के 'चोखे चौपदे' और 'चुभते चौपदे' बोलचाल की शैली में हैं। मुहावरों को खपाने या जड़ने के प्रयास के कारण इन चौपदों में काव्यत्व-स्फुरण कम है।

इनके प्रबन्ध काव्यों में वात्सल्य और विप्रलम्भ का यद्यपि अच्छा निर्वाह है तथापि कथा-प्रवाह अवरुद्ध सा है। प्रकृति-चित्रण लक्षण-पूर्ति के लिए है।

ब्रजी और खड़ी बोली, संस्कृतनिष्ठ और ठेठ भाषा में प्रबन्ध और मुक्तक रचनेवाले महाकवि हरिऔध में कवित्व और आचार्यत्व का मिश्रण है। परम्परा और प्रगति दोनों में गतिशील उपध्याय जी की कला 'द्विकलात्मक' है।

रत्नाकर

मध्यकालीन भावों और आदर्शों तथा पौराणिक आख्यानों पर आधृत काव्य के प्रणेता जगन्नाथ दास की अभिव्यक्ति यद्यपि भक्तिप्रधान है तथापि उसमें नवीनता उद्भावित है। ब्रजभाषा के इस अन्तिम साहित्य-मर्मज्ञ कवि के वर्णनों में अनुभूति की सत्यता और गम्भीर अध्ययन की सूक्ष्मता लक्षित होती है। भाषा इनकी वशवर्तिनी है। भाषा और भाव का बड़ा ही मनोहारी सङ्गम इनकी कृतियों मे है। छन्द-प्रवाह, अलङ्कार-योजना तथा शब्द-शक्ति का उपयोग भावोत्कर्षक है। इस रससिद्ध कविरत्न ने सर्वतोमुखी क्रान्ति और राष्ट्रियता का भी समर्थन किया है। अनेक काव्य-रूपों के सफल-प्रयोक्ता रत्नाकर की कृतियों में भक्ति, रति, नीति, उत्साह आदि का समावेश है।

मैथिलीशरण गुप्त

राष्ट्रकवि गुप्त जी कालानुसारी संस्कारी कलाकार हैं। इनकी कृतियों में गत पचास वर्षों का सांस्कृतिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास सुरक्षित है। इनके काव्य-गान का मुख्य स्वर 'भारतीयता' है तथा इनकी राष्ट्रियता की सीमा में सभी भारतवासी आते हैं। वैष्णव संस्कारों के कारण इन्हें 'भुवन-सेवा' इष्ट है। भावुकतापूर्ण नैतिकता और अपने संस्कृति-प्रेम के चलते इन्होंने रामायण और महाभारत को अपने काव्यों का उपजीव्य बनाया है। प्राचीन काव्य की उपेक्षिताओं की ओर भी ये आकृष्ट हैं, तथा अपने प्रबन्धों में उन्हें महत्त्व प्रदान कर उनका उद्धार किया है।

समसामायिक जीवन को साहित्य में प्रतिबिम्बित करते हुए प्राचीन और नवीन का अद्भुत सामञ्जस्य इन्होंने प्रस्तुत किया है। संस्कृति-समन्वित राष्ट्रियता

समर्थक मर्यादावादी गुप्त जी ने भारत के पारिवारिक जीवन के स्वाभाविक विनोद-व्यापार को अपने काव्यों में अङ्कित किया है।

विभिन्न काव्य-शैलियों के स्रष्टा कवि ने मात्रिक और वर्णिक दोनों प्रकार के छन्दों का सफल प्रयोग किया है।

माखनलाल चतुर्वेदी

आधुनिक युग की राष्ट्रिय-धारा के प्रख्यात कवि माखनलाल जी छायावाद के अग्रदूत हैं। देश-सेवा-व्रती चतुर्वेदी जी की कविताओं में अन्य प्रसिद्ध छायावादी कवियों की तरह दर्शन-विशेष का अनुधावन नहीं है। गाँधी जी के सत्य-अहिंसा-मूलक जीवन दर्शन में निष्ठा रखने के कारण 'भारतीय आत्मा' में बलिदान-भावना जगी है और कारावास से व्यक्तित्व में ओज भर गया है। इनकी राष्ट्रियता-प्रधान कविताओं में उद्बोधन, आक्रोश, आवेश और उत्सर्ग की लालसा बलवती है। पुनीत प्रेमके पोषक माखनलाल जी की अनोखी रहस्यात्मक रचनाओं में घनानन्द की सी विह्वलता और भावुकता है तथा प्रणय-भूमि में भी ये सूली पर चढ़ने को तैयार रहते हैं। इनकी प्रत्येक मनोदशा बलिदान-प्रेरित है। भाव-प्रवाह में इनकी भाषा का प्राकृतिक स्वरूप ही सामने आया है।

प्रसाद

प्रसाद की नवोन्मेषशालिनी प्रतिभा ने सौन्दर्य-चेतना, प्रेमानुभूति, तीव्र-भावाकुलता, अध्ययन और मनन के बलपर हिन्दी कविता में युगान्तर उपस्थित कर दिया। इन्होंने अपनी लाक्षणिक गीतात्मक शैली में भावना जगत् के प्रमे-स्पर्शी चित्र खींचे, सूक्ष्म जगत् को आत्म-साक्षात्कार द्वारा सामने रखा और मनो-विकारों का मूर्तीकरण किया। प्रकृति और जीवन के प्रति जिज्ञासा इनकी [illegible] रचनाओं में है। लगता है कि जीवन की [illegible] करण सदा आकुल रहा। अपनी सतत [illegible]

का अन्वेषण किया है। पार्थिव सौन्दर्य या मोहक प्रकृति-चित्रों को रूपायित करते समय प्रसाद ने दिव्य सत्ता का सङ्केत बहुशः किया है। इनकी लौकिक वेदना विश्ववेदना बनकर प्रकट होती है।

मानवीय और साहित्यिक भूमिका पर प्रतिष्ठित प्रसाद के काव्यों में सांस्कृतिक भावना और आदर्शवादी दृष्टि का आलोक-प्रसार है। अपने सूक्ष्म युग-बोध से इन्होंने संघर्ष-प्रधान कोलाहलमय वर्तमान की समस्याओं का निदान प्रस्तुत किया है।

छायावादी कवियों की बृहच्चतुष्टयी में प्रसाद ही ऐसे महाकवि हैं जिन्होंने अमर महाकाव्य की सृष्टि की है। इन्होंने अपने प्रतीक-प्रधान महाकाव्य में मानव वृत्तियों का सूक्ष्म अङ्कन किया है। जिस जीवन-दर्शन को साहित्यिक वाणी देने के लिए प्रसाद अपनी अन्य कृतियों में इतस्ततः आकुल हैं उसकी पूर्ण अभिव्यक्ति कामायनी में हुई है। इसमें स्पष्ट है कि ज्ञान, कर्म और इच्छा के सन्तुलन अथवा हृदय और बुद्धि के सामञ्जस्य से ही 'आनन्द' की प्राप्ति हो सकती है। तत्सम-प्रधान, माधुय-सम्पन्न काव्य भाषा में प्रसाद ने अपूर्व चित्रात्मकता भर दी है।

निराला

बंगला के स्वच्छन्दतावादी और रहस्यवादी काव्यों तथा बंगीय अध्यात्मवादियों का प्रभाव ग्रहण कर निराला हिन्दी के विद्रोही कवि के रूप में सामने आये। व्यक्तित्व और कृतित्व दोनो में निरालापन केवल इन्हीं में रहा। इनके काव्य में स्वच्छन्दतावादी, प्रयोगवादी, जनवादी और रहस्यवादी प्रवृत्तियाँ एकत्र हैं तथा सौन्दर्य, प्रेम, प्रकृति, अध्यात्म, भक्ति देश और समाज आदि इनके वर्ण्य विषय हैं। इन्होंने उमङ्ग और पुरुषार्थ का प्रभावशाली चित्रण अपनी ओजपूर्ण रचनाओं में किया है। भाषा, भाव और छन्द तीनों में स्वच्छन्द निराला मुक्तवृत्त के पुरस्कर्ता हैं। अनुरणनकारी नाद-योजना भी इनके नव-स्वर-ताल-समन्वित गीतों में है। अपनी प्रौढ़ प्रबन्ध कल्पनाओं में निरालाने उदात्तता निरूपित की है। भारतीय-संस्कृति के इस अमरद्रष्टा ने सीमा-बद्ध-जीवन में अतीत को झलकाया है। जीवन की विकृतियों

और गतानुगतिकता के प्रति विनोद-व्यङ्ग्य का स्वर ऊँचा करने वाले निराला को परम्परावादियों की तीव्र आलोचनाओं का सामना करना पड़ा पर इनकी उद्दाम भावधारा बहुत समय तक वेगवती रही। जीवनभर विषमताओं और आदर्श के द्वन्द्व में पड़े निराला ने हिन्दी-साहित्य को जाग्रत और उन्नतिशील बनाया।

ओजपूर्ण काव्य के संस्कृत-बहुल समस्त-पद-विन्यास में निराला अद्वितीय हैं। शुक्ल जी ने इन्हें बेमेल छन्दों की बेजोड़ आजमाइश करनेवाला कहा है। इनके जनवादी काव्य की भाषा सरल है।

पन्त

पाश्चात्य-प्रभाव-प्रेरित पन्त जी छायावाद के प्रवर्तकों में से एक हैं। कारयित्री-प्रतिभा-सम्पन्न सुमित्रानन्दन जी का काव्य-विकास अवस्था, अध्ययन और राष्ट्रभावना की पुष्टता-प्रौढ़ता के साथ साथ हुआ है। प्रकृति, प्रणय, युगधर्म, रहस्य और दार्शनिक अनुचिन्तन को काव्य में अवतरित करनेवाले इस कवि की जीवन-दृष्टि समयानुसार परिवर्तित होती गयी है। कल्पना-धनी कुतूहली कवि का जिज्ञासाजनित प्रकृति-प्रेम आरम्भिक कविताओं में मुखर हुआ है। इन्होंने सजीव प्राकृतिक उपादानों के अन्तस्तल में व्याप्त विराट् सत्ता की अनुभूति की है। प्राकृतिक पदार्थों के मानवीकरण और उनकी सूक्ष्मताओं के अङ्कन में दक्ष पन्त जी 'पल्लव' काल तक सौन्दर्यवादी रहे।

मानव की मङ्गलकामना करने वाले मनीषी पंत जी 'गुंजन' से सन्तुलित सुख-दुःख के पक्षपाती लक्षित होते हैं। स्पष्ट है कि साम्यवादी विचारों के प्रस्फुटन ने ही वैषम्यपूर्ण समाज-व्यवस्था को ध्वस्त करने और 'नवल मानवपन' को आमन्त्रित करने के लिए कवि को प्रेरित किया है। आगे चलकर गाँधीवाद ने भी इनके मानस को आन्दोलित किया। मार्क्स और गाँधी दोनों के जीवनतन्त्र का इन्होंने मनन किया और मानव की प्रतिष्ठा के अभिलाषुक हुए। सामाजिक अभ्युदय की बलवती इच्छा ने इन्हें प्रगति-प्रेमी बना दिया।

योगी अरविन्द की दार्शनिक प्रवृत्तियों से परिचित होने पर नवमानवतावाद की कल्पना उत्थित होने लगी और चेतनावादी काव्य-भूमि निकल आयी। कुल मिलाकर यही कहा जा सकता है कि पन्तजी में छायावादी, समाजवादी और अध्यात्मवादी विचारों का क्रमिक संक्रमण हुआ। इन्होंने आधुनिक हिन्दी साहित्य को भाषा-सामर्थ्य, अभिनव-छन्द-दृष्टि और व्यक्तिमत्ता दी है।

महादेवी

प्रसाद, निराला पन्त और महादेवी की चतुष्टयी ने आधुनिक हिन्दी काव्य को प्राणवन्त किया है। प्रथम तीन की शृंखला रूप-अरूप दोनों से बँधी पर महादेवी की कड़ी अज्ञात से ही जुड़ी। छायावाद की अन्यतम परिणति महादेवी के जीवन में सर्वत्र विषाद की छाया है और इनका समस्त काव्य वेदनामय है। स्त्री-सुलभ-अश्रुप्रवाह, तरलता और कारुण्यधारा से इनका साहित्य-क्षेत्र सिक्त है। ऐहिक-सुख-विरत, विरह पीड़ा में आनन्दानुभूति करने वाली महादेवी की जीवन-साधना ऐकान्तिक है। इसीसे दार्शनिक दुःखवाद से प्रभावित इस कवयित्री ने सम्पूर्ण जीवन को वेदना की अभिव्यक्ति माना है। इनकी भावात्मकता इनके ससीम हृदय को आकुल कर अद्वैतसिद्धि कराती है। मृत्यु को जीवन और चिर-वियोग को सुख माननेवाली देवीजी ने लोकोत्तर अनुभूतियों का प्रकाशन किया है। इनकी प्रकृति भी रहस्यमयी भूमिका में अवतरित हुई है। इनकी चित्र-विधायिनी कल्पना ने उसमें ऐसे रंग भरे हैं जिससे साधिका का परिचय भी प्राप्त हो जाता है और अञ्जन-रंजित-दृगब्जों से साधक चिर-सुन्दर की छाया (प्रतिबिम्ब) भी देख लेता है। नियन्त्रित-विषय-सीमा में संसरण करने वाली महादेवी जी की विचार-गहनता के कारण काव्य में दुर्बोधता भी है। इस सफल प्रगीतकर्त्री विदुषी के चित्र-विचित्र सुकुमार प्रतीक हिन्दी-भाषा की आकर्षक सम्पदा हैं।

दिनकर

छायावाद के उत्तरवर्ती हिन्दी-साहित्य में जागरण, क्रान्ति, संघर्ष, विप्लव और जीवन्त समाज की चर्चा करनेवाले 'दिनकर' की कविता में यथार्थ और कल्पना का मनोरम साहचर्य है। यह सांस्कृतिक शिल्पी अतीत और वर्तमान का युगपद विधान करने वाला है। अपने कविकर्म का आत्म-परीक्षण करते हुए दिनकर ने अपने को 'छायावाद की पीठ पर आने वाला' तथा 'दो पद्धतियों का वारिस' कहा है। द्विवेदी-युग और छायावाद-युग का दाय सँभालने वाले दिनकर ने युगधर्म एवं राजनीति को काव्य का परिधान दिया है। अनुभूति से अनुप्राणित इनकी स्वतन्त्र जीवन-दृष्टि है इसलिए राजनीतिक विषयों या वादों का प्रतिपादन करते हुए भी उनकी मान्यताओं को अपने काव्य का उद्देश्य इन्होंने नहीं बनाया है। 'उडुकुंजों' को छोड़कर 'गाँव की ओर मुड़ने' का आलोक यद्यपि गाँधी से इन्हें मिला तथापि इन्होंने गान्धीवादी अहिंसा की आलोचना 'कुरुक्षेत्र' में की है। जनवादी विचार-परम्परा का ग्रहण करते हुए भी विवेकानुप्राणित अनुभूति को इन्होंने वरेण्य समझा है। त्रास दैन्य, वैषम्य और सांस्कृतिक ह्रास के इस युग का विचारणीय विषय है—'युद्ध और शान्ति'। दिनकर ने अपने अधुनातन काव्यों में इस पर स्वस्थ विचार किया है।

दिनकर की प्रगतिशीलता भारतीय राष्ट्रियता का पोषण करनेवाली है। अपने विकासशील व्यक्तित्व की मुहर हर रचना पर इन्होंने लगायी है और अपने नवीनतम प्रबन्ध काव्य को इन्होंने 'काव्याध्यात्म' कहा है।

इनकी ओज-प्रसाद-प्रधान भाषा में प्रतीकों का अच्छा प्रयोग है और महाकाव्यों में नाटकीय गुण का भी पुट है।

परिवर्धित संस्करण **संस्कृत-व्याकरणम्** प्रका...

((१) रचनानुवाद खण्ड (२) निबन्ध खण्ड सहित)

(वाराणसी की पूर्वमध्यमा में अनुवाद के लिए स्वीकृत पाठ्य...)

प्रा० ले० आचार्य बदरीनाथ शुक्ल प्राध्यापक, संस्कृत वि० वि० ...

अनुवाद तथा निबन्ध के लिए यह सर्वोपरि पुस्तक है। ... वैज्ञानिक दृष्टिकोण से रखा गया एक-एक शब्द बालकों के बौ... सर्वथा अनुकूल है। प्रसङ्गानुसार विमर्श, टिप्पणी, उदाहरणमाल... प्रश्न, कारिकाबद्ध कारकादि प्रकरण एवं परिशिष्ट आदि सामग्री ... द्रष्टव्य है। संस्कृत व्याकरण के सर्वांश का सार इसमें इस कौशल ... है कि केवल इस पुस्तक के ही अभ्यास से संस्कृतव्याकरण के सर्व... परीक्षोपयोगी संस्कृत निबन्धों का यथेष्ट ज्ञान प्राप्त हो जाता है। ...

मानक हिन्दी व्याकरण

ले० आचार्य रामचन्द्र वर्मा

(वाराणसी की पूर्वमध्यमा-परीक्षा पाठ्य स्वीकृत)

इसमें अनेक शब्दभेदों की बिलकुल नई प्रकार की व्याख्या की गई है और विषय-विभाजन भी बहुत कुछ नये ढंग से किया गया है। यही इस व्याकरण की मुख्य विशेषता है।

निबन्धप्रकाशः

ले० कृष्णकुमार अवस्थी

वाराणसेय संस्कृत विश्वविद्यालय के १९६५ की पूर्वमध्यमा द्वितीय खण्ड के अनिवार्य प्रथम पत्र में संस्कृत निबन्ध के लिए पाठ्य स्वीकृत २-००

प्रबन्ध-पारिजातः

आचार्य रामचन्द्र मिश्र

(वाराणसी की उत्तरमध्यमा परीक्षा पाठ्य स्वीकृत)

संस्कृत-प्रबन्ध के नियम इस पुस्तक में अत्यन्त सरल रूप से समझाये गये हैं और तदनुसार परीक्षोपयोगी 'प्रबन्धलेखनप्रकार' (परीक्षा में आने योग्य निबन्धों के उत्तर) इस तरह संक्षिप्त रूप में लिखे गये हैं कि अभ्यास कर लेने पर विद्यार्थी परीक्षा में सफलता प्राप्त कर सकते हैं। १-५०

प्राप्तिस्थानम्—चौखम्बा विद्याभवन, पो० बा० ६९, वाराणसी-१